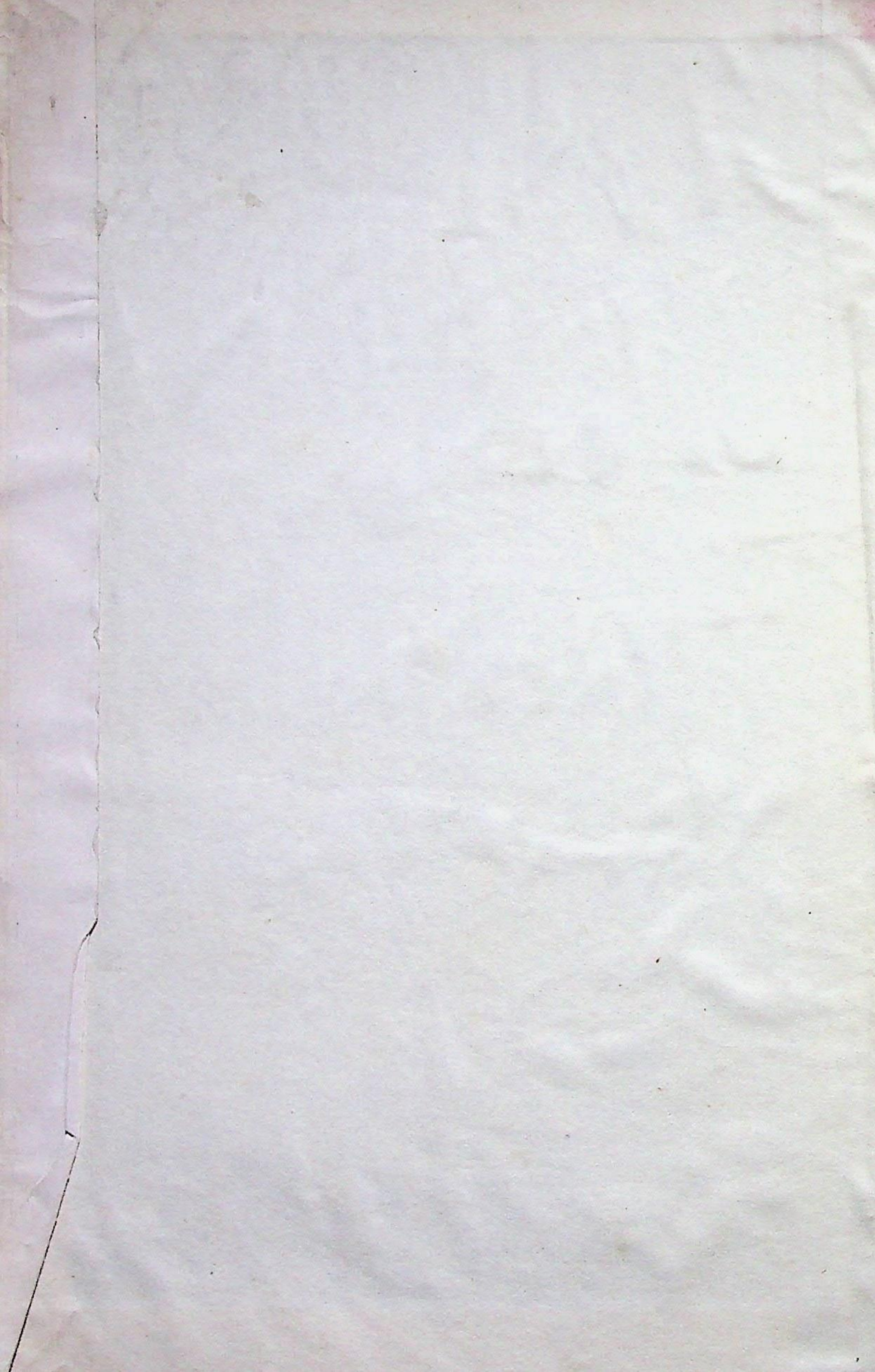
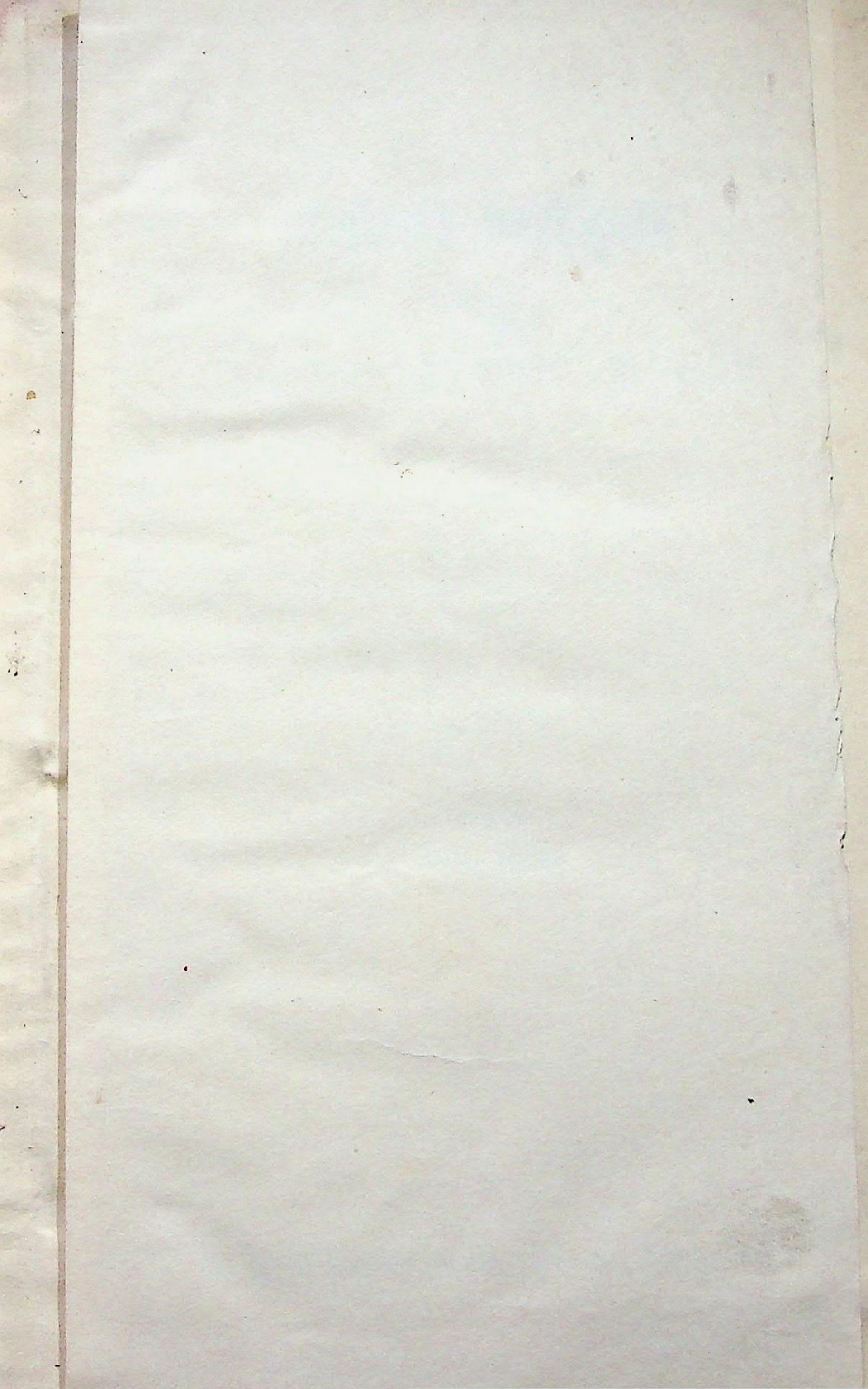
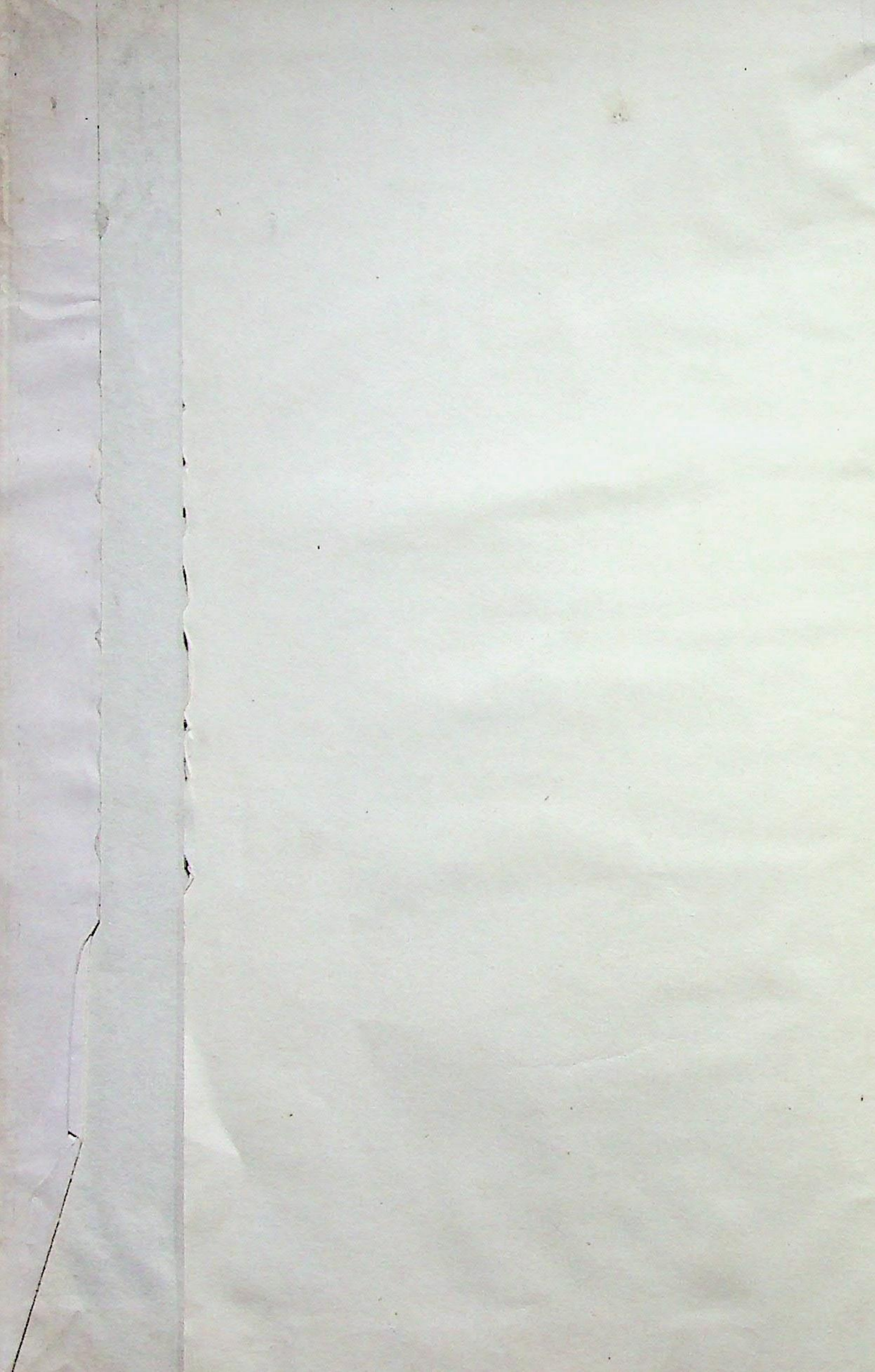
(Dr. R. L. Shant)
Professor of Hindi
Bemina College Srinagar

# हमारा साहित्य

## 1982







# हमारा साहित्य

## 1982

[कश्मीरी भाषा और साहित्य : एक परिचय]

सम्पादक

रमेश मेहता

जे० एण्ड के० अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज, जम्मू ।




जे० एण्ड के० अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड
लैंग्वेजिज़, नहर मार्ग, जम्मू द्वारा प्रकाशित

सेलवेल प्रिंटर्ज, जम्मू द्वारा मुद्रित

मुखपृष्ठ : हरिप्रकाश त्यागी

मूल्य : 13/50

Hamara Sahitya – 1982 (An Introduction to Kashmiri Language & Literature) Edited by : Ramesh Mehta

# अपनी बात

●

'हमारा साहित्य' के प्रस्तुत अंक की योजना कश्मीरी भाषा और साहित्य के प्रति हिन्दी भाषियों की रुचि को ध्यान में रख कर बनाई गई थी। मूल प्रारूप में कश्मीरी भाषा और लिपि के अतिरिक्त गद्य और पद्य की विविध विधाओं पर सामग्री देने की बात थी किन्तु व्यावहारिक कठिनाइयों के रहते योजना को यथावत् कार्यान्वित करना संभव नहीं हो सका। उदाहरणार्थ कश्मीरी गद्य को लिया जा सकता है। प्रस्तुत अंक में कश्मीरी कहानी, उपन्यास, निबन्ध तथा आलोचना पर विस्तृत लेख अपेक्षित थे किन्तु समय पर उपलब्ध न हो सकने के कारण उन्हें नहीं दिया जा सका। भविष्य में इन विधाओं पर विस्तृत सामग्री प्रस्तुत की जा सकेगी—ऐसी आशा है। अस्तु !

सम्प्रति इस अंक में प्रकाशित सामग्री के महत्व को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। श्री मोती लाल साक़ी और प्रो० पृथ्वी नाथ 'पुष्प' ने कश्मीरी लिपि और भाषा की प्रमुख विशेषताओं से परिचित करवाने का सार्थक प्रयास किया है। कश्मीरी भाषा की विशिष्ट ध्वनियों को प्रकट करने के लिए जिन विशेष चिन्हों के प्रयोग को स्वीकृति दी गई है, उनके अभाव में प्रबुद्ध पाठक को इस भाषा की विशेषताओं को समझने में कहीं कहीं कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। किन्तु हमारी विवशता को ध्यान में रखकर इस न्यूनता को सहज ही पाठक झेल सकेंगे—ऐसा विश्वास है। कश्मीरी गज़ल पर यहां दो लेख दिए गए हैं। ऐसा इस विधा के महत्व को प्रतिपादित करने के लिए नहीं बल्कि कश्मीरी गज़ल को दो विभिन्न कोणों से देखने की दृष्टि से किया गया है। इससे न केवल कश्मीरी गजल की विशेषताओं का परिचय मिलता है बल्कि कश्मीरी गज़ल की विकास-यात्रा की भी झलक मिलती है। कश्मीरी कविता पर डा० हामिदी कश्मीरी ने

खोजपूर्ण और सार्थक सामग्री प्रस्तुत की है जिससे कश्मीरी कविता की रेखाएं स्पष्ट होकर उभरती हैं। डा० रतन लाल शांत ने कश्मीरी रंगमंच की विकास-यात्रा को लिपिबद्ध करने का महत्वपूर्ण काम किया है। आज कश्मीर के गांव-गांव, गली-गली में नाट्य-दल कार्यरति हैं किन्तु नाट्य-दलों की मांग को पूरा करने वाले कश्मीरी नाटकों का अभाव सबको सालता है। यह विधा कश्मीरी लेखकों के लिए एक चुनौती बनकर सामने आई है और समय ही बताएगा कि कश्मीरी लेखक इस कसौटी पर कहां तक पूरे उतरते हैं। कश्मीरी में हास्य-व्यंग्य पर मशअल सुल्तानपुरी ने खोज की है तो सम्पूर्ण साहित्य पर एक विहंगम दृष्टिपात करते हुए विदेशी विद्वानों द्वारा कश्मीरी साहित्य पर किए गए काम का परिचय प्रस्तुत किया है डा० बदरी नाथ कल्ला ने। ये सभी लेख इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं कि यह भविष्य के शोध कर्ताओं के लिए प्रस्थान बिन्दु के लिए आधारभूमि का काम करते हैं।

जम्मू प्राँत के एक बहुत बड़े भू-भाग में कश्मीरी बोली और समझी जाती है। यद्यपि इस क्षेत्र में कश्मीरी साहित्य की विकास-यात्रा का इतिहास बहुत पुराना नहीं है तो भी पिछले कुछेक वर्षों में इस क्षेत्र में कश्मीरी के नए और उभरते लेखकों ने अपनी साधना से कश्मीरी जगत में अपनी पहचान बनाने में जो सफलता प्राप्त की है इसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। शाहबाज राजोरवी ने इस क्षेत्र में हुई प्रगति का जायज़ा लिया है। भविष्य में विद्वान लेखक इस दिशा में और अधिक खोज करके यहां के भूले-बिसरे कश्मीरी लेखकों को सामने लाने में सफल होंगे—ऐसी कामना है।

यदि इस अंक में प्रकाशित सामग्री हिन्दी समाज को कश्मीरी भाषा और साहित्य के विस्तृत अध्ययन के लिए प्रेरित कर सकेगी तो मैं समझूंगा कि हमारा यह प्रयास सफल रहा है और यह सफलता ही भविष्य में हमें इस दिशा में और अधिक कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करेगी।



—रमेश मेहता

# अनुक्रम

# कश्मीरी लिपि, भाषा और साहित्य—एक परिचय

# कश्मीरी लिपि

मोती लाल 'साकी'

कश्मीरी भाषा की लिपि, उस राजनैतिक और सामाजिक उथल-पुथल का दर्पण है, जो पिछले छह सौ वर्षों में, कश्मीर में, बार-बार होने वाले परिवर्तनों की जननी है। यहां, कभी तो गृह युद्ध हुए और कभी अ-कश्मीरी शासकों ने, हम पर परायी भाषाएं लादीं ! स्वतंत्रता प्राप्त होने तक, कश्मीरी को सरकारी संरक्षण प्राप्त नहीं हुआ ! स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात भी; कश्मीरी के अधिकारों को मान्यता प्रदान करने में, शासकों ने विशाल हृदयता का प्रमाण नहीं दिया ! कश्मीरी विद्वानों और बुद्धिजीवियों का परायी भाषाओं के प्रति अनुराग, उनकी मानसिक दासता का ही परिचायक है। आभिजात्य का मानदण्ड परायी भाषाओं पर अधिकार प्राप्त करना ही रहा। अतः कश्मीरी भाषा और साहित्य के संरक्षण का श्रेय, सूफियों और संतों को जाता है, जिन्होंने इस भाषा का संवर्द्धन कर इसे समुन्नत किया।

तथ्य प्रमाण हैं कि कश्मीरी के लिए किसी लिपि को निरूपित करने का प्रश्न तो दूर इस भाषा को शब्दों के सांचे में ढालना भी स्वप्न-मात्र था। यही कारण है कि लल्लद्यद से पूर्व का कश्मीरी साहित्य उपलब्ध नहीं है। लल्लद्यद के काव्य के कलात्मक गठन को देख कर यही कहा जा सकता है कि कश्मीरी साहित्य का जन्म उनसे बहुत पहले का है। इसका प्रमाण सिक्कों और बाटों के वे विशुद्ध कश्मीरी नाम हैं, जो लोगों की जिह्वा पर, अभी तक बने हुए हैं। कश्मीरी के लिए उपयुक्त और वैज्ञानिक लिपि निरूपित करने का कोई भी संगठित प्रयास, स्वतंत्रता-प्राप्ति तक नहीं हो पाया। इस दिशा में केवल व्यक्तिगत प्रयत्न हुए, जो संरक्षण तथा साधनों के अभाव में लोकप्रिय नहीं हो सके। भिन्न-भिन्न समयों में कश्मीरी, कतिपय फेर बदल के साथ सरकारी मान्यता-प्राप्त लिपि में

लिखी जाती रही; परन्तु यहां एक बात की ओर इंगित करना आवश्यक प्रतीत होता है। बडशाह कालीन ऐतिहासिक सन्दर्भों से, नाटक आदि लिखे जाने सम्बन्धी प्रमाण मिलते हैं परन्तु अवतार भट्ट कृत 'बानासुरवध कथा' के अतिरिक्त, उस युग की और कोई कृति उपलब्ध नहीं है। लल्लद्यद का काव्य, पहली बार अठारहवीं शती में भास्कर राज़दान द्वारा लिपिबद्ध किया गया। हज़रत शेख-उल-आलम के जीवन और काव्य-विषयक कुछ प्रसंगों से ज्ञात होता है कि आरम्भ में 'ऋषिनामे' शारदा लिपि में लिखे गए थे परन्तु अभी तक कोई भी ऋषिनामा उपलब्ध नहीं हो सका।

हिन्दू-युग में कश्मीरी की सरकारी भाषा संस्कृत थी। कश्मीरियों का संस्कृत पर यहां तक अधिकार था कि बिल्हण को एक स्थान पर लिखना पड़ा— "मेरे देश की महिलाएं संस्कृत धाराप्रवाह बोलती हैं।" संस्कृत को राज-भाषा बने रहने का श्रेय, मुस्लिम-युगीन, सुल्तान शहाब के समय तक प्राप्त रहा, परन्तु कश्मीर में संस्कृत, नागरी लिपि के स्थान पर शारदा लिपि में लिखी जाती थी। शारदा लिपि, मूलत: ब्राह्मी लिपि की मध्यम शाखा से निकली है। यह लिपि कश्मीर और कांगड़ा सहित समस्त उत्तर-पश्चिमी भारत में, काबुल और अफ़गानिस्तान तक प्रयुक्त होती रही। महमूद गज़नवी के आक्रमण के पश्चात भी यह लिपि उक्त क्षेत्र में, लम्बे समय तक प्रचलित रही। कश्मीर में शारदा का विशेष विकास हुआ। कुछ लोगों का विचार है कि संसार को, यह लिपि कश्मीर ही की देन है; यही कारण है कि कश्मीर को शारदा-भूमि कहा जाता रहा है। अत: यह लिपि अभी तक जीवित है। कश्मीरी शैव-ग्रन्थों का प्रणयन प्राय: इसी लिपि में हुआ और हमारे यहां संस्कृत पाण्डुलिपियों का विशाल भण्डार भी इसी लिपि में उपलब्ध है।

कश्मीरी के प्रारंभिक लेखक हिन्दू थे, इसलिए कागज पर सर्वप्रथम लिखा जाने वाला कश्मीरी साहित्य शारदा लिपि में ही रचा गया। मेरे विचार में, शारदा लिपि में लिखी गयी प्रारम्भिक पांडुलिपियां 'महानय प्रकाश' और 'बानासुरवध कथा' हैं। इन दो पुस्तकों के पश्चात, लल्लद्यद के वाख, 18वीं शती में, भास्कर राज़दान ने, शारदा लिपि में ही लिपिबद्ध करके सुरक्षित कर लिए थे।

शारदा, वस्तुत: संस्कृत की स्थानापन्न लिपि है। बोधी और गुरुमुखी लिपियों का उत्स भी शारदा ही है। कश्मीरियों ने अपनी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए यही लिपि अपनायी। कश्मीरी की विशिष्ट ध्वनियों की अभिव्यक्ति

के लिए कश्मीरियों ने इस में कोई परिवर्तन अथवा परिवर्द्धन नहीं किया अन्यथा यह लिपि एक विशिष्ट लिपि का रूप धारणा करती ! वे इसके स्थान पर केवल, अनुमान से काम चलाते थे और इसी अनुमान के आधार पर शारदा में लिखित लेख को पढ़ लिया जाता था। वस्तुत: इस अनुमान का लाभ केवल, कश्मीरी जानने वालों को ही होता था। गैर-कश्मीरी के लिए, शारदा लिपि में लिखी गई कश्मीरी का शुद्ध उच्चारण असम्भव था। यद्यपि शारदा और नागरी अक्षरों का क्रम एक-सा था, तथापि कश्मीरी समाज में शारदा अक्षरों की ध्वनियों का उच्चारण कुछ इस प्रकार किया जाता था कि एक ही समय में, एक ही लिपि, संस्कृत और कश्मीरी के लिए उपयोगी बन गई थी। उदाहरणार्थ 'उ', 'प' के स्थान पर भी प्रयुक्त होता था और 'ओ' के स्थान पर भी। 'पुष्कर' लिखकर 'पोष्कर' पढ़ा जाता था। यह ठीक है कि प्रारम्भिक युग में, कश्मीरी शारदा में लिखी जाती थी, परन्तु इस लिपि में भी, कश्मीरी की सभी ध्वनियों को अभि-व्यक्त करने की सामर्थ्य नहीं थी। एक अन्य बात की ओर इंगित करना आवश्यक प्रतीत होता है कि कश्मीरियों ने शारदा व्यंजनों के नाम कश्मीरी की विशिष्ट ध्वनियों के अनुसार रखे थे। 'क' का नाम कश्मीरियों ने 'क ककौ' रखा था। इसी प्रकार दूसरे व्यंजनों के नाम भी रखे गए थे। शारदा लिपि के विषय में ग्रियर्सन ने लिखा है, ''पंजाब के पहाड़ी क्षेत्रों में प्रचलित टाकरी और लहंदा लिपियां शारदा के यथेष्ट निकट हैं, परन्तु इनके विपरीत देवनागरी की भांति इसमें 'स' और 'ह' पीछे आते हैं और इन का प्रयोग स्वरों के पश्चात् नहीं होता। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि शारदा के अक्षर बनावट की दृष्टि से, देवनागरी के अक्षरों से कुछ भिन्न हैं।

कश्मीरी की प्रथम मुद्रित पुस्तक, 'पवित्र बाइबल' का कश्मीरी अनुवाद है, जो सर्वप्रथम 1822 में लुधियाना में छपी थी। यह शारदा लिपि में है। इससे काफी देर बाद, 'बाइबल' के कश्मीरी अनुवाद का दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ, जिसकी लिपि 'नस्तलीक़' है।

कश्मीरी के लिए देवनागरी का प्रयोग, मेरी खोज के अनुसार, ग्रियर्सन ने किया। जिसने 'रायल एशियाटिक सोसायटी' के लिए 'कृष्ण अवतार लीला', 'रामायण', 'लल वाख़यानी' पुस्तकें संयोजित कीं। ये सभी पुस्तकें, इस संस्था ने, देवनागरी में प्रकाशित कीं। कश्मीरी की सभी ध्वनियों की प्रस्तुति की सामर्थ्य देवनागरी में भी नहीं। इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए ग्रियर्सन ने पण्डित मुकुन्द राम शास्त्री के साथ मिलकर

इसे कुछ संवर्द्धित किया । इस प्रकार ग्रियर्सन के कश्मीरी कोष में संवर्द्धित प्रतीकों का प्रयोग किया गया है। ग्रियर्सन द्वारा 'रायल एशियाटिक सोसायटी' के लिए तैयार की गई सभी कश्मीरी पुस्तकें 1914-1930 के मध्य प्रकाशित हुईं । नागरी को कश्मीरी की सभी ध्वनियों के उच्चारण योग्य बनाने के लिए, मा० ज़िन्दा कौल, प्रो० एस० के० तोषखानी ग्रौर जिया लाल कौल जलाली ने यथेष्ट प्रयत्न किए जो कतिपय ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण उपयोगी सिद्ध नहीं हुए। भिन्न-भिन्न कालों में, देवनागरी में लिखे गए कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

"कांट (कांटा), मचिल (कमर), ल्यल (देग), कश्ह (टुकड़ा), काशवह (चमचा)।" —['कश्मीरी डिक्शरी'—ग्रियर्सन]

"मगर कुलिस त मनशस छ ग्रख फ़रख़। चेरि कुल दियि चेर"

—['बहार-ए-कश्मीर', 1923—प्रो० तोषखानी]

[मगर पेड़ ग्रौर मनुष्य में एक ग्रन्तर है कि खोबानी का पेड़ खोबानी ही देगा]

कश्मीरी के लिए नागरी ग्रब भी प्रचलित है। कश्मीर से बाहर, कश्मीरियों द्वारा पहले तथा ग्रब भी प्रकाशित की जाने वाली पत्रिकाग्रों का कश्मीरी खण्ड देवनागरी में ही होता है क्योंकि कश्मीर से बाहर रहने वाले ग्रधिकांश कश्मीरी नस्तलीक़ से ग्रपरिचित हैं । उनके लिए कश्मीरी तक पहुंचने का एकमेव माध्यम देवनागरी है। इस दृष्टि से पत्रिकाग्रों में 'कोशुर समाचार' (दिल्ली), 'वितस्ता' (कलकत्ता), बहार-ए-कश्मीर (इलाहाबाद) ग्रौर 'सुन्दरवान' (चण्डीगढ़) के नाम उल्लेखनीय हैं। 'कोशुर समाचार' में, कश्मीरी के लिए नागरी का प्रयोग इस प्रकार होना है—

"यि कथ बोज़िथ तोर प्रोफ़ीसरस फ़िकरि ज़ि यि छे सॉरयॅ चाल"

—['कोशुर समाचार' : ग्रगस्त 1976]

[यह बात सुन कर प्रोफ़ेसर की समझ में ग्रा गया कि यह तो बस एक चाल है]

1953 में, कश्मीरी के लिए, एक स्वीकार्य ग्रौर उपयुक्त लिपि के निरूपण के उद्देश्य से, गठित की गई सरकारी समिति के एक सदस्य, श्री जिया लाल कौल जलाली ने, इसके लिए देवनागरी लिपि का सुझाव दिया था, जिसे ग्रधिकांश सदस्यों का समर्थन नहीं मिल सका ।

कश्मीर में ग्रंग्रेजी के प्रचलित हो जाने पर, कश्मीरियों का ध्यान रोमन लिपि की ग्रोर गया। अंग्रेज चाहते थे कि वे लोगों के ग्रधिक निकट ग्राएं जिससे वे उन पर ग्रपना पंजा मज़बूत कर सकें। ग्रंग्रेजों ने कश्मीरी सीखने के लिए बहुत

प्रयत्न किए। इसमें सन्देह नहीं कि वे यह सब, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त कर रहे थे, परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि हम, अंग्रेजों द्वारा कश्मीरी के विकास एवं संरक्षण सम्बन्धी उनकी भूमिका को अनदेखा कर दें। रोमन में, सर्वप्रथम, कश्मीरी लिखने का श्रेय, एक फ्रांसीसी डाक्टर अलमजली को प्राप्त है। उसका संक्षिप्त कश्मीरी शब्द कोष, 1882 में, लन्दन में प्रकाशित हुआ था। इसके पश्चात सर वाल्टर लारेंस का नाम है, जिन्होंने अपनी पुस्तक 'द वैली आफ़ कश्मीर' में, बड़ी संख्या में, कश्मीरी शब्द, रोमन में लिखे। इस दृष्टि से डा० न्यू की पुस्तक 'द कश्मीरी प्राबर्ब्स' भी उल्लेखनीय है। यह अपनी तरह की ऐसी पहली पुस्तक है, जिसकी सहायता से बहुत से लोगों ने 'कश्मीरी भाषा की जानकारी प्राप्त की। प्रसिद्ध भाषा शास्त्री जार्ज इब्राहीम ग्रियर्सन ने कश्मीरी के बहुसंख्य शब्दों को रोमन लिपि में लिखा। ग्रियर्सन द्वारा कश्मीरी के लिए प्रस्तावित रोमन लिपि का उदाहरण देखिए—

| | | | |
|---|---|---|---|
| Kav$^a$run | कावरुन | Kāta (यह) | कांट |
| Kāwoɪ$^u$ | कावुर | Lyolu | लियल |
| Kāwarēr | कावरेर | Kas$^a$m | कसम |
| Khŏtu | ख़ोंट | Kāshawah | काशव् |
| Mŏhkun | मोंकुन | Koshu | (हिन्दी में यह ध्वनि नहीं है) |
| Macyal | मचल | Kȯȯli | (हिन्दी में यह ध्वनि नहीं है) |

ग्रियर्सन के पश्चात सर अर्ल स्टाइन ने, इस परम्परा को बनाए रखा। कश्मीरी के लिए, रोमन लिपि के निरूपण-हेतु, द्वितीय सचेत प्रयत्न पं० सालिग राम कौल ने किया। उनका प्रथम 'रीडर' अब उपलब्ध नहीं है, परन्तु द्वितीय रीडर से कुछ उद्धरण प्रस्तुत करना समीचीन होगा, ताकि कश्मीरी ध्वनियों की प्रस्तुति सम्बन्धी उनके प्रयत्नों का परिचय मिल सके।

| | | | |
|---|---|---|---|
| au | आ | Kauw | कौवा |
| Ai | इ | Aidd | इद |
| ea | (हिन्दी में यह ध्वनि उपलब्ध नहीं है) | Zeaw | ज़बान |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ie | ई | Miel | मील |
| Oa (हिन्दी में यह ध्वनि नहीं है) | | Doawd | दूध |
| u | ु | Shur | बच्चा |
| Uee (हिन्दी में ध्वनि नहीं) | | Tueer | सर्दी |
| Uu | ू | Ruud | बारिश |

यूरोपीय अनुसन्धान कर्त्ताओं ने, प्राय:, कश्मीरी अथवा कश्मीरियों सम्बन्धी पुस्तकें लिखते समय, रोमन लिपि का प्रयोग किया है, जिनमें पर्याप्त भिन्नता है। कोई एक ढंग से लिखता है तो कोई दूसरे से। 1930 से 1947 तक श्री प्रताप कालेज की पत्रिका 'प्रताप' का कश्मीरी भाग रोमन लिपि में छपता था, परन्तु बाद में रोमन के स्थान पर नस्तलीक को अपना लिया गया। आजकल रोमन लिपि में लिखी जाने वाली कश्मीरी के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

Sang^a dilaa Sitamgraa
Aar Tse chhuy na akh zaraa
Zaayi gayas bu swondaraa
Maay baraan baraan vwolo

[An Anthology of Kashmiri Verse, P. 56 : T. N. Raina]

Kamla vriyun Levith nun
Phirith nin Bu : zith gatshun

[A Reference Grammer of Kashmiri : B B. Kachru]

1953 में, लिपि-निर्धारण-हेतु निर्मित सरकारी समिति के एक सदस्य, जिया लाल 'नाजर' ने कश्मीरी के लिए रोमन लिपि अपनाने का सुझाव दिया था जिसे निरस्त कर दिया गया। 'नाजर' द्वारा प्रस्तावित चिन्ह और अक्षर इस प्रकार हैं—

स्वर : aa : 33 : ii . r, uu . 00 : E e y a

व्यञ्जन : B c d g h j k-kh L M n n̈ P Ph R S S'
t̲ t th Ts Tsh v y z

देवनागरी की भांति रोमन लिपि को भी बहुमत ने अस्वीकार कर दिया था। आज के वैज्ञानिक युग में इन दोनों लिपियों में से एक लिपि अपना लेने पर कश्मीरी भाषा की उन्नति की गति क्षिप्रतर हो सकती थी। इन लिपियों का

'टाइप' उपलब्ध होने से, अच्छी पुस्तकों के प्रकाशन में आड़े आने वाली 'किताबत' जैसी मुख्य बाधा का भी अन्त हो जाता।

कश्मीर में इस्लाम और नस्ख़ का आगमन एक साथ हुआ। नस्ख़ सामी भाषाओं के लिए प्रयुक्त होने वाली लिपि है। शाहमीरी युग में फ़ारसी और अरबी की लिपि नस्ख़ ही रही है। मैंने, अभी तक नस्ख़ में लिखित कोई भी पांडुलिपि नहीं देखी। हां, 'ऋषिनामों' में कतिपय स्थानों पर 'नुन्द ऋषि' का काव्य इसी लिपि में उपलब्ध है। नस्ख के पश्चात नस्तलीक़ का विकास हुआ और धार्मिक ग्रन्थों की लिपि होने के कारण कश्मीरी के लिए यही उपयुक्त समझी गई। पिछले सौ वर्षों में प्रकाशित कश्मीरी पुस्तकों में से, 99 प्रतिशत इसी लिपि में हैं। कश्मीरी के लिए नस्तलीक़ का प्रयोग, शारदा ही की भांति किया गया, क्योंकि विशिष्ट कश्मीरी ध्वनियों के लिए उपयुक्त संकेतों का अभाव इस लिपि में भी है। लेखकों और प्रकाशकों ने, मूल लिपि में कोई परिवर्तन नहीं किया। आलेख के प्रकाशित हो जाने पर, पाठक उसे, मात्र भाषा-ज्ञान और अनुमान से ही पढ़ता था। नस्तलीक़ के माध्यम से कश्मीरी-अध्यापन असम्भव है और इस पर तुर्रा यह कि लेख को प्रत्येक कातिब अपने ही ढंग से लिखता था। अत: किन्हीं दो मुद्रणों में एक-रूपता की खोज असम्भव है। नस्तलीक़ में लिखी गई आरम्भिक पांडुलिपियों के आधार पर क, ग-त, ट-थ, ठ के मध्य अन्तर करना असम्भव है। पाठक के लिए, वास्तविक शब्द का अनुमान प्रयत्न-साध्य है। तथ्य तो यह है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व, कश्मीरी के लिए कोई विशेष लिपि नहीं थी। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने ढंग से लिखता था और इस प्रकार के लेखन में अनेकरूपता थी। नस्तलीक़ को कश्मीरी सांचे में ढालने का प्रयत्न, सर्वप्रथम सैफ़-उद्-दीन तारावली ने किया। उसने फ़ारसी में, कश्मीरी लिपि सम्बन्धी पुस्तक 'रसाला असवात कश्मीर' भी लिखी है, परन्तु उसका यह व्यक्तिगत प्रयत्न 1290 हिजरी में, उसके देहान्त के साथ ही निश्शेष हो गया। इस दिशा में कुछ कार्य पं० दया राम गंजू ने भी किया था, परन्तु संरक्षण के अभाव में उसका प्रयत्न भी व्यर्थ सिद्ध हुआ। 1905 ई० में शिक्षित कश्मीरी पंडितों ने कश्मीरी के लिए लिपि-निर्धारण (मानकीकरण) हेतु प्रयत्न आरम्भ किए थे। इसका विवरण इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले 'कश्मीर-दर्पण' की फ़ाइलों में उपलब्ध है। ये प्रयत्न किस पड़ाव पर थम गए, कुछ पता नहीं चलता। इस क्रम में प्रो० तोषखानी के प्रयत्न विशेष जीवन्त थे। उन्होंने रोमन एवं

देवनागरी—दोनों लिपियों में रीडर तैयार किए थे, परन्तु निर्दयी समय के हाथों, उनके प्रयत्नों पर भी पानी फिर गया।

सरकारी स्तर पर, कश्मीरी के लिए लिपि-निर्धारण सम्बन्धी कार्य, एक समिति को, 1949 में सौंपा गया। समिति के सदस्य थे—गुलाम अहमद शमाई प्रो० एस० के० तोषखानी, मिर्ज़ा आरिफ़, प्रो० जिया लाल कौल आदि। इस समिति ने, कश्मीरी के लिए नस्ख के आधार पर एक लिपि निरूपित की। उक्त लिपि में वर्ण नस्ख के रहे, परन्तु स्वर-सूचक मात्राओं का निरूपण अलग से किया गया। इस लिपि में तैयार किए गए रीडर स्कूलों में, अल्प समय तक ही प्रचलित रह पाए।

1953 में इस लिपि को निरस्त करने के साथ-साथ, एक नई समिति गठित की गई। नई समिति में निरीक्षण-समिति [जिसने पुरानी लिपि का अध्ययन किया था] के पांच और 1949 की 'स्क्रिप्ट-कमेटी' के दो सदस्य भी सम्मिलित थे। आजकल इसी समिति द्वारा प्रस्तावित लिपि का प्रचलन है। आवश्यकतानुसार किए जाने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप, वर्तमान लिपि में लगभग सभी विशिष्ट ध्वनियों की अभिव्यक्ति की सामर्थ्य और लेखन-क्षमता है।

1971 में 'कश्मीरी डिक्शनरी बोर्ड' की एक बैठक में निर्णय लिया गया था कि श्रद्धास्पद नामों को मूलभाषा ही की भांति लिखा जाए। अब कश्मीरी में 17 स्वर और 38 व्यंजन हैं।

महाविद्यालयीन स्तर पर, कश्मीरी की, ऐच्छिक विषय के रूप में मान्यता और विश्वविद्यालय में अध्यापन से, कश्मीरी की समुन्नति का मार्ग प्रशस्त हो गया है। लिपि भाषा के लिए होती है, भाषा लिपि के लिए नहीं होती। प्रचलित लिपि में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किए जा सकते हैं। लिपि को सरल तथा लोकप्रिय बनाने के हेतु मात्रा-चिन्हों का प्रयोग, धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। इससे मस्तिष्क पर अधिक बोझ भी नहीं पड़ेगा। इस लिपि का रूप नस्तलीक जैसा दिखाई देता है, परन्तु इसमें किए जाने वाले परिवर्तनों के परिणामस्वरूप, यह बड़ी सीमा तक परिवर्तित हो गया है। यह विशुद्ध कश्मीरी रूप है। महत्वपूर्ण बात यह है कि यह लिपि लोकप्रिय सिद्ध हो रही है। यह लोकप्रियता इसके विकसन और चिरजीवी होने की साक्षी है।

●

—अनुवाद : 'निर्मल' विनोद

# कश्मीरी भाषा : एक समावीक्षण

—पृथ्वी नाथ पुष्प

परिप्रेक्ष्य—कश्मीरी भाषा कब श्रौर किस में से उभरी, यह जानने के कई एक प्रयत्न अब तक किये जा चुके हैं। हर प्रयत्न की अपनी सीमा होती है ; वस्तुनिष्ठ प्रयत्न की भी : श्रौर पूर्वाग्रह पर आधारित प्रयत्न की तो सीमाएं ही सीमाएं हुआ करती हैं। वास्तव का अनावरण करने के बजाय जो प्रयत्न बंधीटिकी धारणा को सत्याभास की बैसाखियों पर खड़ा करना चाहे, उसका मायाजाल श्रौर भी जटिल है, क्योंकि एक मायाजाल को तोड़ते तोड़ते कई बार नये नये मायाजाल भी रचे जाते हैं। कश्मीरी भाषा के उद्गम की तलाश करनेवाले कई भावुक खोजी कुछ ऐसी ही विडम्बना के रसिया बन चुके हैं।

जिन दो छोरों के बीच यह विडम्बना हिलोरें लेती रही है, वे हैं— एक श्रोर अतिप्राचीन भारतीयता का व्यामोह, श्रौर दूसरी श्रोर भारतेतर उत्प्रेरण की रहस्यात्मक प्रतिपादना का आग्रह। जभी तो एक श्रोर इस बात पर बल दिया जा रहा है कि कश्मीरी भाषा उतनी ही पुरानी है जितनी वेदों की भाषा ; श्रौर दूसरी तरफ़ दावा किया जा रहा है कि कश्मीरी भाषा इबरानी (Hebrew) की एक शाखा है। इन दो छोरों के बीच कश्मीरी को दारदी कुल की सन्तति प्रमाणित करनेवालों की ऊबचूब भी जारी है। मज़े की बात तो यह है कि तीनों उपपत्तियों के पक्षधर एक सी भ्रांति के शिकार हो जाते हैं। जिस 'भ्रांति' के लिए वे दूसरों को लताड़ते हैं, उसी के सहारे वे अपनी 'मान्यता' को मनवाने पर तुले हुए हैं। तीनों पक्षधर भूल जाते हैं कि भाषा के उद्गम की पहचान उसकी मूलभूत संरचना की तात्विक पहचान के बग़ैर हो ही नहीं सकती। केवल ध्वनिसाम्य तथा शब्दसाम्य को इस पहचान की कुंजी माना नहीं जा सकता। भाषा के निजी कैंडे के भीतर ही ध्वनिसाम्य तथा शब्दसाम्य सार्थक ठहरते

हैं और इनका साक्ष्य विश्वसनीय बन जाता है । नहीं तो एक ही भाषा में भी कई और भाषाओं की ध्वनियों और शब्दावलियों का समावेश हो सकता है। एक कश्मीरी वाक्य के ये चार रूप लीजिए :

१. चोन बोय वुछ्म गरि (:तेरे 'भाई' को मैंने घर देखा)

२. चोन बरादर वुछ्म गरि

३. चोन ब्रदर वुछ्म गरि

४. चोन भ्राता जो वुछुम गरि

'बोय' के स्थान पर 'बरादर', 'ब्रदर' या 'भ्राता जी' का प्रयोग करने से क्या इन स्थानापन्न शब्दों के कारण ही कश्मीरी वाक्य फ़ारसी, अंग्रेज़ी या संस्कृत का वाक्य कहलायगा ?

कश्मीरी वाक्य के कैंडे का मूलाधार है इसका क्रियापद जिसके साथ आकर ही संज्ञा सर्वनाम आदि शब्दों का योगदान प्रासंगिक बन जाता है। अतः उद्गम की बात मुख्यतः इसी क्रियापद से पूछ लेना समीचीन होगा । हां, साथ ही कारकपदों तथा अव्ययों के सांचों-ढाँचों का भी परीक्षण करना होगा । कश्मीरी वाक्य में आकर पराई भाषा का शब्द भी कश्मीरी भाषा ही के संरचनात्मक नियमों के अधीन हो जाता है और परायापन खो बैठता है । 'बोय' के प्रयोगों के स्थानापन्न 'बरादर', 'ब्रदर' तथा 'भ्राताजी' के कश्मीरी प्रयोगों पर दृष्टि डालिए तो बात स्पष्ट हो जायगी :

१. बरादरन, ब्रदरन, भ्राता जियन : बाय (:भाई ने)

२. बरादरस, ब्रदरस, भ्राता जियस : बायिस (:भाई को)

३. बरादर सुंद, ब्रदर सुंद ,भ्राता जियुन, भ्राता जी सुंद : बाय सुंद (:भाई का)। शब्द कहीं से भी आया हो, देखना यह है कि कश्मीरी वाक्य के कैंडे में आकर वह किस भाषापद्धति को अपनाता है ।

शब्दों के अतिरिक्त वाग्धारा के बारे में भी यही बात कही जा सकती है। इसे भी तो अपना लिया जाता है। उदाहरण के तौर लीजिए ये वाक्य :

१. सु कर वाति ? (:वह कब आ पहुंचेगा?)

२. सु कर हावि बुथ, म्वख, वंय (:वह कब मुख दिखलायगा?)

३. सु कर दियि दर्शुन ? (:वह कब दर्शन देगा?)

४. सु कर अनि तशरीफ ? (:वह कब तशरीफ लायगा ?)

५. सु कर यियि ? (:वह कब आ जायगा ?)

इनमें से २-४ के वाक्य संस्कृत या फ़ारसी प्रभाव की छाप के बावजूद १ तथा ६. के वाक्यों जितने ही कश्मीरी वाक्य हैं । 'हावि', 'दियि' और 'अनि' इन क्रियापदों से अपनायेजा कर ही 'म्वख', 'वंय', 'दर्शुन' और 'तशरीफ़' जैसे (संस्कृत/फ़ारसी) तत्सम शब्द कश्मीरी वाक्य में समा पाय हैं। तो इस संदर्भ में भाषा के उद्‌गम की बात इन्हीं क्रियापदों से पूछी जायगी न कि इनके साथ वरते गये तत्सम शब्दों से ।

अत: उद्‌गम पर विचार करते समय तीन बुनियादी बातों को ध्यान में रखना ज़रूरी है :

एक यह कि हर भाषा एक विशिष्ट व्यक्तितत्व धारण करने से पहले कभी न कभी किसी न किसी समृद्ध भाषा से अलग होकर अपनी स्वतन्त्र विकासयात्रा पर चल पड़ती हैं। दूसरी यह कि समृद्ध भाषा से कुछ मूल तत्त्वों की पूंजी लेकर भी अलग होती हुई भाषा का नये नये सजातीय विजातीय भाषातन्त्रों से सामना हो ही जाता है और अपनी नई नई अपेक्षाओं को पूरा करने के उपाय करने ही पड़ते हैं। और तीसरी बात यह कि जहाँ एक ओर मूलधारा से निकली हुई धारा में से भी उपधाराएं निकलती हैं, वहीं दूसरी ओर कई और उपधाराएं भी उसमें आ मिल जाती हैं, और उसके साथ एकमेक होकर बहती चली जाती हैं। किसी भी स्रोत से निकल कर बहनेवाली धारा में उन सभी क्षेत्रों की बू-बास और रंगत आ ही जायगी, जिन क्षेत्रों से होकर यह धारा आगे ही आगे बढ़ती चलेगी ।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : भाषाप्रवाह की ऐसी ही एक क्षेत्रीय प्रक्रिया का नाम है कश्मीरी भाषा जो कश्मीर में सदियों से प्रचलित रही है। भाषा के लिए 'कश्मीरी' नामोल्लेख सबसे पहले अमीर खुसरो की नुह सिपिह्र (ल. १३०० ई०) में मिलता है जिससे इतना तो पक्का हो जाता है कि उस समय तक कश्मीरी भाषा का अपना व्यक्तितत्व निखर चुका था। ललवाक (ल. १३५० ई०) तथा नुंद् श्रुक (ल. १४००ई०) की सशक्त अभिव्यक्ति

इस बात का ठोस समर्थन करती हैं । इससे पीछे की ओर दृष्टिपात करें तो कश्मीरी भाषा की विकासयात्रा के ये चरण नज़र आते हैं :

१. लल्द्यद से कोई सौ वर्ष पहले(ल.१२५० ई० में) रचे गये महानय-प्रकाश में शैव-सिद्धों द्वारा अपनायी गयी 'सर्वगोचर देशभाषा' के अपभ्रंशी उन्मेष का लिपिबद्ध रूप मिलता है । महानय-प्रकाश की 'गाथा' ही ने बाद में वाक और श्रुक का रूप धार लिया ।

२. इससे भी सौ एक वर्ष पूर्व (ल. ११५० ई० में) प्रचलित छुम्मसप्रदाय के अन्दर उस समय की कश्मीरी प्राकृत में रचे गये सूत्रों तथा कारिकाओं के नमूने मिलते हैं ।

३. प्राचीन से प्राचीन लिपिबद्ध नमूने जिन्हें कश्मीरी की प्राकृत-अपभ्रंश परम्परा में कश्मीरी भाषा की पूर्वपीठिका के रूप में पहचाना जा सकता है, दसवीं सदी के हैं जो अभिनवगुप्त के तन्त्रसार की संग्रहकारिकाओं के अन्तर्गत सुरक्षित हो पाय हैं । स्पष्ट है कि कश्मीरी भाषा का उद्गम कश्मीर में प्रचलित किसी प्राकृत-अपभ्रंश धारा ही से संभव है जो दसवीं सदी के बाद धीरे धीरे उस रूप में परिणत हो पाई जिसे अब कश्मीरी के नाम से जाना जाता है । बिल्हण (ल. ११०० ई०) ने संस्कृत और प्राकृत के साथ साथ जिस जन्मभाषा के वागविलास की ओर संकेत किया है वह उस समय की क्षेत्रीय अपभ्रंश ही तो थी । उसी जन्मभाषा को कश्मीर से बाहर कश्मीरी का नाम मिला । कश्मीर में इसे भाषा, जन्मभाषा या लोकभाषा ही कहा जाता रहा ।

अतः कश्मीरी की ध्वनिगत तथा वाक्यगत निजी विशेषताओं को इसके विकास-प्रवाह में सुरक्षित किसी क्षेत्रीय परम्परा का समग्र योगदान मान लेना ही ठीक होगा । नागों और पिशाचों की मूल भाषाओं के तथाकथित प्रभाव की वायवी परिधि में अटकल के घोड़े दौड़ाये तो जा सकते हैं, पर साथ ही यह भी सावधानी बरतनी होगी कि कश्मीरी की संरचना में इस प्रभाव की साफ़ निशान-दिही की जाय, नहीं तो बेकार की बात होगी । वैसे भी इस संभावित प्रभाव की परिकल्पना कश्मीरी के प्राकृत-अपभ्रंश संदर्भ में ही युक्तियुक्त है, न कि कश्मीरी के उद्गम की अवधारणा में । एक ही परिवार की परिधि के अन्तर्गत विकास पाने वाली भाषाएं भी तो कई बातों में एक दूसरे से भिन्न जान पड़ती हैं । तो क्या इस विभिन्नता के आधार पर इन सहोदर भाषाओं को अलग अलग परिवारों से निकली हुई मान लिया जाय ? एक ही परिवार के अंदर भी वीप्सा की

गुंजाइश रहती है। यही क्षेत्रीय वीप्सा बोलियों उपबोलियों का आधार बन जाती है। कश्टवारी बोली इस ओर सार्थक इङ्गित करती है और किसी सीमा तक मराज़ी और कमराज़ी भी वीप्सा की सुविधा से काम लेती आई हैं। छुख के लिए 'कश्टवारी' थुख तथा 'वनुन' या 'दपुन' के लिए ज़बुन किसी बीच की कड़ी का पता देते हैं।

कश्मीरी की विशेषताएं दो प्रकार की हैं :

साधारण जो कई और भारतीय भाषाओं में भी किसी सीमा तक पाई जाती हैं; और

असाधारण जो कश्मीरी की बिल्कुल अपनी हैं।

३.१. साधारण विशेषताओं में से कुछ एक ये हैं :

.१. कश्मीरी में घ, झ, ढ, ध, भ ध्वनियां मिलती ही नहीं, जब कि डोगरी, पंजाबी, गोजरी में इनका टोनात्मक रूपान्तरण क्अ, च्अ, ट्अ, त्अ तथा प्अ जैसा रूप धारण कर लेता है। यह एक बृहत्-क्षेत्रीय विशेषता जान पड़ती है जिसे मूल दरदी कहलाने वाली शीना जैसी भाषाओं ने भी अपना लिया है।

.२. कश्मीरी में ज़ के अतिरिक्त च़ और छ़ दो विशेष ध्वनियां मिलती हैं जो मराठी में भी सुनी जाती हैं।

.३. अरबी-फ़ारसी से लिये गये कश्मीरी शब्दों में इन भाषाओं के विशेष हरूफ़ (वर्ण) लिखे तो जाते हैं पर उनका उच्चारण शुद्ध कश्मीरी प्रतिस्वनिम जैसा बन चुका है।

.४. 'होना' के अर्थ में कश्मीरी ने गुजराती तथा बंगाली की तरह संस्कृत अस्ति के प्राकृत-अपभ्रंश प्रतिरूप अत्थि को रूपान्तरित किया है, जब कि डोगरी, पंजाबी, गोजरी, आदि ने हिन्दी की तरह भवति के होदि को काम में लाया है। इसके उलटा कश्मीरी ने डोगरी, पंजाबी, गोजरी, हिन्दी की तरह शक्नोति के प्रतिरूप सक्केदि को अपना लिया है। जब कि बंगाली, असमिया तथा ओड़िया ने पारयति के प्रतिरूप पारेदि को बरता है।

.५. कश्मीरी में बहुत प्राचीन शब्दों के ऐसे प्रतिरूप मिलते हैं जो कई एक आधुनिक भाषाओं में लुप्त हो चुके हैं। जैसे न्वश जो 'स्नुषा' के प्रतिरूप 'नुषा' का क्षेत्रीय परिणाम है और डोगरी, पंजाबी तथा गोजरी आदि में नुह् बन चुका है। ऐसे ही कश्मीरी के ज्ञातिबोधक शब्द पोफुव (पूफा) और मासुव (:मौसा) हैं जो क्रमश : पोफ (:पूफी) और मास (:मौसी) के तद्धित रूप हैं। डोगरी, पंजाबी तथा गोजरी में ये शब्द 'पुफ्फड़' और 'मासड़' बन गये हैं। हिन्दी में इसके उलटा फूफा और मौसा से ही तद्धितरूप फूफी और मौसी बनाये गये हैं। कश्मीरी शब्द प्राचीन परिपाटी के निकट है। बाप की बहन होने के नाते पूफी पहले, पूफा बाद में, मां की बहन होने के नाते मौसी पहले, मौसा बाद में; हां, मामञ (:मामी) की बात अलग ठहरी। मां का भाई होने के नाते माम (:मामू) पहले, मामञ (:मामी) बाद में।

३. २. असाधारण विशेषताओं में से कुछ एक ये हैं :

.१. कश्मीरी क्रियापद के कई रूपों में कर्ता के अतिरिक्त कर्म के पुरुष का लिंग और वचन सहित सार्वनामिक स्पर्श भी मिलता है।

जैसे :

वुछुन (:उसने 'उसे' देखा) ; वुछिन (:उसने 'उन्हें देखा)
वुछुनख (:उसने 'तुझे' देखा) ; वुछुनस (:उसने 'मुझे' देखा)
वुछथन (:तूने 'उसे' देखा) ; वुछिथख (:तूने 'उन्हें' देखा)
वुछथस (:तूने 'मुझे' देखा) ; वुछथन (:वुछथन का स्त्री०)

वुछम (:मैंने 'उसे' देखा) ; वुछिम (:मैंने 'उन्हें', देखा)
वुछमस (:मैंने 'उसका'/'उसमें' देखा)
वुछुमय (:मैंने 'तेरा'/मुझमें देखा)
वुछमख (:मैंने 'तुझे' देखा) वुछमख (...का स्त्री०)

पोरुथ (अखबार) : तूने (अख़बार) 'पढ़ा'

परिथ (अखबार) : तूने (अख़बार) 'पढ़े'

परुथ (किताब) : तूने (किताब) 'पढ़ी'

पर्यथ (किताब) : तूने (किताबें) 'पढ़ीं'

वोनथम (हाल) : तूने मुझे (हाल) कहा/सुनाया

वननथम (कथ) : तूने मुझे (कथा) कही/सुनाई

वनिथम (कुसु) : तूने मुझे (क़िस्से) सुनाये

वजिथम (कथु) : तूने मुझे (कथाएं) सुनाईं, आदि आदि।

भारत की किसी भी दूसरी प्रमुख भाषा में इस प्रकार की सार्वनामिक परछाईं नहीं मिलती; हां, प्राचीन फ़ारसी भाषा में इसका आंशिक प्रतिबिम्ब अवश्य पाया जाता हैं। जैसे :

गुफ़्तमश् (:मैंने 'उससे' कहा), गुफ़्तमी (:तूने 'मुझसे' कहा)। जान पड़ता है कि इस प्रकार की कोई हिन्द-ईरानी भाषाई परम्परा कश्मीर में आये हुए आर्यों के साथ ही आ पहुंची थी जो यहां के क्षेत्रीय प्राकृत-अपभ्रंश प्रवाह में परिपुष्ट होती चली। अत: भाषा की इस प्रवृत्ति को क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में देशज कहा जाय तो गलत न होगा। तत्सम, तद्भव और देशज का पारिभाषिक कार्यक्षेत्र शब्दों तक ही सीमित क्यों रखा जाय ? सरचना पर भी इसे लागू क्यों न समझा जाय ?

३.२.२. कश्मीरी में स्वतंत्र वाक्य की संरचना प्राय: इस क्रम को अपनाती है : कर्ता - क्रिया ... कर्म (जैसे अंग्रेज़ी) ; जबकि अधिकाँश भारतीय भाषाएं प्राय: कर्ता ... कर्म .. क्रिया का अनुसरण करती हैं। विशेष परिस्थितियों में ही कश्मीरी वाक्य कर्म को कर्ता और क्रिया के बीच स्थान देता है। क्रियापद अनेकांगी हो तो कर्म पहले घटक के बाद आजाता है। उदाहरण :

सु परि किताब (:वह किताब 'पढ़ेगा')

तम्य पर किताब (: उसने किताब 'पढ़ी')

सु छु किताब परान (: वह किताब पढ़ता/पढ़ रहा है)

परन्तु : मे य्वस किताब पर (: मैने जो किताब पढ़ी)

सु क्वस किताब छु परान (: वह कौन सी किताब पढ़ता है?)

संरचना में क्रम का यह निर्धारण सम्भवत: कश्मीर के प्राकृत-अपभ्रंश की किसी आकस्मिक घटना का परिणाम है ।

३.२.३. कश्मीरी भाषा में नपुंसक लिंग तो नहीं पाया जाता, पर निर्जीव तथा सजीव दो कोटियां मानी जाने के कारण निर्जीव (पुं०, स्त्री०) में प्राचीन नपुंसक लिंग की छाप मिल जाती है । जैसे : कुस (:कौन ?); क्या (:क्या चीज़?); कस (: किसे?); यस ज़निस/ज़न्नि (:जिस पुरुष/स्त्री को); पर, कथ (:किस चीज़ को?) : यथ किताबि/अख़बारस (:जिस किताब/अख़बार में); येमिस जन्य सुंद (:पुरुष का) ; ज़नहुंद (:स्त्री का); पर,

अख़बारुक (:अख़बार का); गरुक (:घर का) ।

हां, नपुं० की यह छाप केवल निर्जीव सूचक पुं० शब्दों में पाई जाती है, अन्य में नहीं । जभी :

अथुक (:हाथ का) कहा जाता है, अथुसुंद नहीं ;

नरिहुंद (:बांह का) कहा जाता है, नर्युक नहीं ;

कनुक (:कान का) कहा जाता है, कनसुंद नहीं ;

अछहुंद (आंख का) कहा जाता है, अछुक नहीं ।

व्यक्तिवाचक संज्ञाओं में भी यह छाप मिलती है । जैसे :-

अनथनागुक (:अनंतनाग का),जेम्युक (:जम्मू का) ; पर,

कशीरिहुंद (:कश्मीर का), कशीर्युक नहीं ।

ऐसे ही, गामुक (:गांव का), शहरुक (:शहर का) ; पर,

रामुन (:राम का ), रामुक नहीं।

३.२.४. कश्मीरी कारकपदों में कर्ता (कर्मणि प्रयोग), कर्म तथा संबन्ध तो संश्लिष्ट रह गये हैं, शेष विश्लिष्ट हो चुके हैं और कर्म रूप [कहीं कहीं अपादान रूप] के साथ अव्यय आदि शब्द जोड़ने से अपना कारकार्थ पूरा करते हैं।

जैसे :

तम्य [:उसने] ; तस [:उसे] ; तसुंद [:उसका];

मे [:मैंने/मुझे] , म्योन [:मेरा];

ज़न्य [:पुरुष ने] ; ज़निस [:पुरुष को] ; ज़न्यसुंद [.. का]

कुल्य [:पेड़ ने] ; कुलिस [:पेड़ को] ; कुल्युक[... का];

गरन [:घर ने] ; गरस [:घर को] ; गरुक [... का];

नाथन [:नाथ नें] ; नाथस [:नाथ को] ; नाथुन [:नाथका];

नाथस निश सुत्य.. ह्युव...बग़ार.. क्युत...

[:नाथके पास...साथ...जैसा.. बिना...लिए...]

मेज़स निश सुत्य.. ह्युव.. क्युत .. पेठ [:ऊपर] ...तल [:नीचे],

गरस अंदर...मंज़ [:बीच]...अद्य अद्य [चारों ओर];

पर, मेज़ु बग़ार तल्य [:नीचे से] पेठ्य [:ऊपर से]

गरु नेबर [:बाहर], दछिन्य, [.दाई ओर], मंज़्य [:बीच से], आदि में

अपादान के अवशेष का स्पर्श भी मिलता है।

३.२.५. ऐसे ही करण तथा अधिकरण के भी अवशेष अव्ययों में नज़र आते हैं :

अथ्य [:हाथ से] ; दस्य/दस्त्य [:हाथों द्वारा]

नख्य [:कन्धे से[ ; व्वखुल्य [:पैदल] ; अस्मान्य [:आकाश मार्ग से],

गरि [:घर में] ; वति [:रास्ते में] ; वति वति [:हर कहीं],

जायि जायि [:जगह जगह] ; कति [:कहाँ ?] तति [:वहां] आदि आदि।

इस प्रकार कश्मीरी ने अपना संरचनात्मक व्यक्तित्व निखार कर अपनी याचनशक्ति को अक्षुण्ण रखा और हर परिस्थिति का सामना करके अपने काम की भाषाई सामग्री को अपनाते रहने का गुर सीखा। पुरानी भाषाओं से, आसपास की बोलियों से, नित नये स्रोतों से, जहां कहीं भी काम की चीज़ नज़र आई, अपने संरचनात्मक सांचे में ढाल कर अपना ली, जैसा कि फ़ारसी से लिये गये 'दस्त' तथा 'जा' के रूपान्तर दस्त्य तथा जायि जायि से स्पष्ट है।

पंद्रहवीं शती में फ़ारसी कश्मीरी की राजभाषा बनी तो कश्मीरी भाषा ने इससे पूरा पूरा लाभ उठाना शुरू किया। नुंदऋषि [शेख नूरुद्दीन] के श्रुकों में फ़ारसी-अरबी से आये हुए लफ़्ज़ संस्कृत-निष्ठ शब्दों के साथ घुलमिल गये तो शम्स फ़क़ीर [ल. १८५० ई०] के रहस्योद्‌गारों में शैवदर्शन की व्यापक शब्दावली सूफ़ीमत की विशिष्ट शब्दावली से गले मिल गई। बात असल में अभिव्यक्ति के औचित्य की है, विषयवस्तु के घेरे की है, भाषा को बरतने वाले की निजी अपेक्षा और क्षमता की है, सम्प्रदाय या फ़िरक़े की नहीं। अतः जो विद्वान आज भी ग्रियरसन की देखा देखी 'हिन्दू कश्मीरी' तथा 'मुस्लिम कश्मीरी' की रट लगाते रहते हैं, उन्हें अपने इस वक्तव्य के आधार को नये सिरे से टटोलना होगा। कश्मीरी भाषा फ़ारसी-अरबी-आमेज़ भी हो सकती है, संस्कृतबहुल भी; मौलवियाना भी हो सकती है, पुरोहिताना भी; संवरी-निखरी भी; हो सकती है, खुरदरी भी शहरयाती भी हो सकती है, देहाती भी; साहित्यिक भी हो सकती है, काम काजी भी; तहदार भी हो सकती है, सीधीसादी भी। जैसे सामाजिक-सांस्कृतिक घेरे में बोली या बरती जायगी, वैसा ही इसका रंग-आहंग होगा, बोलनेवाला सचेत सक्षम हो तो।

५. १. ध्वनि विधान : कश्मीरी मूलभूत ध्वनियां :

.१. स्वर : अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ

[—] [—ा] [ि—] [—ी] [ ु ] [ ू ] [ े ] [ ो ]

अ़, आ़; उ़, ऊ़, ए़, ओ़

( ) ( ) ( ) ( ) ( ) ( )

(ə) (ə:) (ü) (ü:) (ĕ) (ŏ)

२ व्यञ्जन : क ख ग (ं)

क़ ख़ ग़

च छ ज ञ

च़ छ़ ज़ (ts, tsh, z)

ट ठ ड (ं)

त थ द न (ं)

प फ ब म

फ़

य र ल व

श स ह

## ६ : /अ'/ के बहुरूप

१. अ/ : अकुल, अकुम, अलम,

२. अ/ : अलिम, अजीब, अलील

३. आ/ : आलिम, तारीफ, जाली

४. आ/ : माशोक, शमा, जालसाज़

५. उ/ : मोकु, वाकु; दफु

६. ए/ : फेल, शेरयात

७. ओ/ : ओज़ुर, ओहद,

८. ओ/ : मोलूम, तोलुक; मोकूल

९. य/ : यलथ यलाज, शायिर

## ५.२. ध्वनि परिवर्तन

१. शब्द या शब्दखण्ड के अन्त में आने वाला व्यञ्जन प्रायः हलन्त् बोला जाता है। जैसे, तस का स, तिमन का न तथा बुलबुल के दोनों 'ल'।

२ लिंग, वचन, भाववाचक आदि के अनुसार रूपपरिवर्तन में व्यञ्जन बदल जाते हैं, और साथ ही कई बार स्वर भी बदल जाते हैं।

जैसे

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | : | रुत [:भला] | ⇀ | रुच़र [:भलाई] |
| त ⇀ च़ | : | मोत [मतवाला] | ⇀ | मच़ [:मतवाली] |
| ट ⇀ च | : | मोट [:मोटा] | ⇀ | मोचर [:मोटी] |
| | | च़ोट [:रोटी] | ⇀ | च़ोचि [:रोटियां] |
| | | खोट [:खोटा] | ⇀ | खोचर [:खोट] |
| क ⇀ च | : | थोक [:थक गया] | ⇀ | थच [:थक गई] |
| | | न्युक (:दुबला, नाज़ुक) | ⇀ | निच [दुबली, नाज़ुक] |
| ख ⇀ छ | : | होख (:सूखा) | ⇀ | होछ [:सूखी] |
| ठ ⇀ छ | : | ज़्यूठ [:लम्बा] | ⇀ | ज़ेछर [:लम्बाई] |
| ग ⇀ ज | : | द्रोग [मंहगा] | ⇀ | द्रोजर [:मंहगाई] |
| द ⇀ ज़ | : | शोद [:शुद्ध] | ⇀ | शोज़र (:शुद्धता] |
| थ ⇀ छ़ | : | वोथ [:खुला] | ⇀ | वछ़र [खुलापन] |
| ल ⇀ ज | : | मोल [:पिता] | ⇀ | माज (मां) |
| | | खोल (:चौड़ा) | ⇀ | खजर [चौड़ाई] आदि आदि |

३. क्रियापदों में सार्वनातिक प्रतिछाया के वचन आदि अनुसार की व्यञ्जनों का परिवर्तन हो जाता है : जैसे :

न ⇀ थ ⇀ म : कोरुन (:उसने किया); कोरुथ (तूने...); कोरुम (मैंने...)

स ⇀ म ⇀ य : करेस (:उसे करेगा); करेम (:मुझे.. ); करिय (:तुझे...)

वोनमस (:मैंने उसे कहा); वोनमय ( तुझ...)

म—स : वोनथम (:तूने मुझे कहा); वोनथस (:...उसे...);

स—ख : वोननस (:उसने उसे ..); वोननख (:उसने उन्हें...) आदि आदि

५.२.४. लिंग, वचन, काल, प्रेरणार्थकता आदि अनुसार स्वर भी बदल जाते हैं।

जैसे :

अ—आ—ओ : अन (:ले आ); अन्य (:उन्हे ले आये); ओन (उसे ले आयें)

कर (:कर ले); कर (:कर ली); कोर (कर लिया)

करिव (:कर लो); करिथ (:कर के)।

उ—इ—उ—ए : वुछुम (मैंने उसे देखा); वुछिम (.. उन्हें ..)

वुछुम (.. उसे स्त्री० ...); वुछेम (... उन्हें .. स्त्री०)।

अ—ओ—अ : तर (:पार हो जा); तर (:पार हो गई) तोर (:पार हो गया)

ओ—आ तोर (:पार कर दिया उसे); तार (...उसे .. स्त्री०)

तरिथ (:पार हो कर); तारिथ (:पार करा के)

आ—ओ—आ : वात (:पहुंच जा); वोत (:पहुंचा); वात्य (पहुंचे)।

ओ—ऊ : खोच्‌ुन (:डरना); खूच (:डर गया); खूच्य (:डर गये)

बोज़ (:सुन ले); बूज़िथ (:सुन कर)।

ए—ई—-यू : लेख (:लिखले); लीख्य (लिखे); ल्यूख (:लिखा)

च़ेर (:देर); चीर्यं (:देर से)

ऊ—ऊ : कूत (:कितना); कूत्य (:कितने)

-यू—ई : त्यूत (:उतना); तीत्य (:उतने)

-य—ए : द्यद (:दीदी/दिद्दा); देदि (:दीदी को)

व्यथ (:वितस्ता); वेथि (:वितस्ता को)

ओ—अ : दोद (:जल गया); दद्यमुतिस (:जले हुए को)

ओन (:अंधा); अनिस (:अंधे को) आदि आदि।

५. ३. सर्वनाम-विधान :

सु (:वह-पुं०); स्व (:वह-स्त्री०); हु (:वह उधर); ह्व (:स्त्री०)
यि (यह/जो चीज़); ति (:वह चीज़); क्या (:क्या चीज़ ?)
कुस (:कौन-पु०); क्वस (:कौन-स्त्री०); कस/कमिस (:किसे)

कुस ? हु; यि; सु; च़ (:तू); बु (:मैं)

कम ? हुम; यिम; तिम; तोह्य (:तुम); अस्य (:हम)

कस/कमिस ? हुमिस; येमिस; तस/तमिस; चे (:तुझे); मे (:मुझे)

कमन ? हुमन; यिमन; तिमन; तोहि (:तुम्हें); असि (:हमें)

कसुंद/कम्यसुंद ? हुम्यसुंद; येम्य०, तसुंद/तम्यसुंद; चोन (:तेरा)

म्योन (:मेरा)
कहोंद/कमनहुंद ? हुमनहुंद; यिहोंद/यिमन; तहोंद/तिमनहुंद;

तुहुंद (:तुम्हारा); सोन (:हमारा)
कम्य ? हुम्य; येम्य; तम्य; चे (:तूने); मे :मैंने)

कमव ? हुमव; यिमव; तिमव; तोहि (:तुमने); असि (:हमने)

५. ४. क्रियापद विधान :

१. करुन (:करना); परुन (:पढ़ना); लेखुन (:लिखना); गछ़ुन (:जाना)
आसुन (:होना)
२. कर (:कर ले); पर (:पढ़); लेख (:लिख); गछ़ (:जा); आस (:हो)

करिव (:कर लो); परिव; लीखिव; गछिन; आसिव

३. करिन (:वह करे/वे करें); परिन; लीखिन; गछिन आसिन

४. करत (:तू कर लेना); परत: लेखत; गछत; आसत

कर्यतव (:तुम कर लेना); पर्यतव; लीख्यतव; गयछ्तव; आस्यतव

कर्यतन (:वह/वे कर ले); पर्यतन; लीख्यतन; गछ्यतन; आस्यतन

करिन (:वह/वे करें), परिन, लीखिन, गछिन, आसिन

५. करि (:वह करेगा), परि, लेखि, गछि, आसि
करन (:वे करेंगे), परन, लेखन, गछन, आसन
करख (:तू करेगा), परख, लेखख, गछख, आसख
करिव (:तुम करोगे), परिव, लीखिव, गछिव, आसिव

कर (:मैं करूंगा), पर, लेख, गछ, आस

करव (:हम करेंगे), परव, लेखव, गछव, आसव

६. करिहे (:वह कर लेता), परिहे, लेखिहे, गछिहे, आसिहे
करहन (:वे कर लेते), परहन, लेखहन, गछहन, आसहन

करहख (:तू कर लेता), परहख, लेखहख, गछहख, आसहख
कर्यहिव (:तुम कर लेते), पर्यहिव, लीख्यहिव, गछ्यहिव, आस्यहिव

करह (:मैं करता), परह, लेखह, गछह, आसह

करहव (:हम करते), परहव, लेखहव, गछहव, आसहव

५. ४. ७. कर्यजेन (:वह करे/वे करें), पर्यजेन, लीख्यजेन, आस्यजेन

कर्यजेव (:तुम करना), पर्यजेव, गछ्यजेव, आ(स्य)जेव

कर्यजि (:तू करना), पर्यजि, लीख्यजि, गछ्यजि, आ(स्य)जि

कर्यजिहे (:तुझे/तुम्हें करना चाहिए था), पर्यजिहे, लीख्यहज़िहे, गछ्यजिहे,

आ(स्य)जिहे

कर्यजिहेन (:उसे/उन्हे करना चाहिए था), लीख्यजिहेन, आ(स्य)जिहेन

कर्यज़िहेव (:तुम लोगों को करना चाहिए था), आ(स्य)ज़िहेव

.८. कोर [:उसने/उन्होंने/तूने/तुमने/मैंने/हमने/ .. ने किया]

पोर, ल्यूख, वुछ [:देखा], खेव [:खाया], चेव [:पिया]

बूज [:सुना], प्रुछ [:पूछा]; वोन [:कहा]; आोन [:लाया]; न्युव [लिया]

पर, द्युत [:दिया]; ह्योत [:लिया]

गव [:वह गया], आव [:आया], वोत [:पहुंचा[; ब्यूठ [:बैठा]; ओस[था]

.९. कोरुन [:उसने किया[; पोरुन; ल्यूखन; प्रुछुन; वोनुन; न्यून

कोरुथ [:तूने किया]; पोरुथ; ल्यूखुथ; प्रछुथ; वोनुथ; आोनुथ; न्यूथ

कोरुम [:मैंने किया]; पोरुम; ल्यूखुम; प्रुछुम; वोनुम, आोनुम, न्यूम

कोरुख [:उन्होंने ...], पोरुख, ल्यूखुख, प्रुछख, वोनुख, आोनुख, न्यूख

कोरव [:तुम लोगों ने...], पोरव, ल्यूखव, प्रुछव, वोनव, आोनव, न्यूव

१०. [अखबार] पोर, [किताब] पर, [खत] ल्यूख], [चिठ्य] लीछ।

पोरुन, परुन, करुथ, करव, करुम, परुथ, परवु, परुम, ल्यूखुथ,

लीह्लवु, लीछिम।

११. कर्योन (:उसने कर तो लिया); पर्योन; लेछ्योन; प्रिछ़ोन; वन्योन; अन्योन; नियोन।

कर्योथ (:तूने कर तो लिया); पर्योथ; लेछ्योथ! प्रिछ़ोथ; वन्योथ; नियोथ...

कर्योम (:मैंने कर तो लिया); पर्योम; लेछ्योम; प्रिछ़ोम; वन्योम; नियोम ..

कर्योव/कर्यव (:उन्होंने/हमने कर तो लिया); लेछ्योव/लेछ्यव; निमोव/नियव...

कर्योव (;तुम लोगों ने कर तो लिया); लेछ्योव/लेछ्यव; नियोव

गयव (:वह गया तो सही); गंयेय (हम गए तो सही); गयोख (:तू गया तो सही)...

गयेव (:तुम लोग गए तो सही): गयोस (:मैं गया तो सही)

आयव (:वह आया तो सही); वाचव (:वह पहुंचा तो सही);

बेछव (वह बैठा ...)

५.४.१२. करुन गछि/पजि/वाति/शूबि : (करना चाहिए/ठीक है)

करुन गोछ (:करना चाहिए था)

करुन लगिन (;करना उचित नहीं)

१३. करुन छु (:करना है)/ओस (:था)/आसि (:होगा)

परुन छु (:पढ़ना है); अखबार छू परुन (;अखबार . )

परुज छे (:पढ़नी है); किताब छे परुज (:किताब...)

परुन्य छि (:पढ़ने हैं); अखबार छि परुन्य

परमिछ (:पढ़नी हैं); किताब छ परजि

वत ओस ख्योन (:भात खाना था)

चोट आस न खेज (:रोटी नहीं खानी थी)

केल आस्य खेन्य (केले खाने थे)

अम्बु आस न खेमि (:अम्बियाँ नहीं खानी थीं)

गेवुन आसि बोज़ुन (:गाना सुनना होगा)

तकरीर आसन न बोज़ुन्य (:भाषण नहीं सुनते होंगे)
शेछ आसि बोज़ुञ (:सूचना सुननी होगी)

खबर आसन न बोजञि (:खबरें नहीं सुननी होंगी)

१४. करान छु/छि/छे/छ (:कर रहा है/रहे हैं/रही है/रही हैं)

करान छुख/छिव/छुस/छि (:तू रहा है/तुम.. रहे हो/मैं रहा/हम...

छेख/छवु/छस/छ (:तू...रही है/तुम...रही हो/मै रही.../हम...

करान ओस/आस्य/आस/आसु (:था/थे/थी/थीं)

ओसुख/आसुख/आस्यव/आसवु (:तू था/थी/तुम थे/थी

ओसुस/आसुस/आस्य/आस (:मैं था/थी/हम थे/थी

५.४.१५. करान करान (:करते हुए); पकान पकान (:चलते चलते/पैदल)

वुछान वुछान (:देखते देखते/शीघ्र); दवान दवान (:दौड़ते दौड़ते/फौरन)

कर वुन (:करने वाला); पर वुन (:पढ़ने वाला); लेख वुन......

कोरमुत (:किया हुआ); पोरमुत (:पढ़ा हुआ; पठित)

ल्यूखमुत (:लिखा हुआ); बूज़मुत (:सुना हुआ); प्रछ्मुत (पूछा हुआ)
आमुत (:आया हुआ); गोमुत (:गया हुआ); न्यूमुत (:लिया हुआ)
आमुत छु/ओस/आसि, आमुच़ छे/आस/आसि

आमुत्य छि/आस्य/आसन, आमचु छे/आसु/आसन

अखबार छु पोरमुत, किताब छे परमुच़

अखबार छि पर्यमुत्य, किताब छ परिमच़

## 6. उपसंहार

संरचना के इस विस्तृत ब्यौरे से कश्मीरी भाषा के प्राकृत-अपभ्रंशी आधारों की जो झलक मिलती है उसके प्रकाश में कहा जा सकता है कि कश्मीरी भाषा भी उन्हीं मध्यकालीन परिस्थितियों में से उभर आई है जिनमें से उत्तर भारत की दूसरी आधुनिक भाषाएं उभरी हैं। इन सभी की तरह कश्मीरी की भी अपनी क्षेत्रीय परम्परा रही है जो अंत:क्षेत्रीय सम्पर्क से उचित लाभ उठाती हुई अपना व्यक्तित्व निखारने में सफल हुई है।

————

# कश्मीरी कविता

डा० हामिदी कश्मीरी

कश्मीरी भाषा में विरचित काव्य की कुछ विधाओं उदाहरणार्थ ग़ज़ल, गीतिकाव्य अथवा कविता का उद्भव फारसी अथवा उर्दू से माना जाता है। यह बात भी कथनीय है कि काव्य की कुछ विधाएं यहां की माटी से भी उद्भूत हैं जिनमें वाख़ (वाक्य) और वचन (वचन अथवा शब्द) उल्लेखनीय हैं। किन्तु ये विधाएं परिवर्तनशील समय के साथ विकासित न हो सकीं एवं वर्तमान शती के वयोवृद्ध कवियों, उदाहरणार्थ महजूर, समदमीर, अहदज़रगर अथवा फ़ाज़िल कश्मीरी के साथ ही इन का भी अन्त हो गया। नवीन कवियों की प्रीति प्राय: प्रेम विषयक गीतों (गज़ल) के प्रति ही देखने को मिलती है। उर्दू में भी काव्य की विभिन्न विधाओं के अनुष्ठान की यही स्थिति दृष्टिगोचर होती है। गज़ल की विधा के शताब्दियों से व्यवहार में लाए जाने पर भी इस के उपयोग में कोई न्यूनता नहीं आई है अपितु कुछ नवीन अथवा आधुनिक कवि आज अपनी स्वाभाविक शक्ति से इसे नया जीवन प्रदान करने में लगे हैं। रही कविता, इस के विषय में यह कहना असंगत नहीं होगा कि इस का भाव योरुपीय विशेषत: आंगल भाषा की कविता से ग्रहण किया गया है। आंगल काव्य में कविता का चित्रण उतना ही पुरातन है जितना कि स्वयं काव्य का। यह समय के परिवर्तन के साथ-साथ परिवर्तित एवं परिवर्धित होती हुई विभिन्न रूप धारण करती आई है। अब यहां दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं। पहला क्या कश्मीरी भाषा के काव्य के अन्तर्गत हमें पुरातन काल में कविता की कोई प्रथा दृष्टिगोचर नहीं होती है? दूसरा, कश्मीरी काव्य में आंगल कविता का चित्रण कब से दृष्टिगोचर हुआ?

प्रथम प्रश्न का उत्तर यह है कि कश्मीरी भाषा के क़दीम युग के काव्य में कविता की कोई ऐसी प्रथा विद्यमान नहीं है जो आंगल कविता के आधार पर

बनी हो यानि काव्य का उस रूप में चित्रण जिस के अनुसार एक केन्द्रीय अनुभव धीरे-धीरे शब्दों की सांकेतिक शक्ति के माध्यम से उन्नति के पथ पर बढ़ता हो और कविता स्थायी रूप से काव्य के अंग के रूप में विकसित होती है। पुरातन काल के कश्मीरी काव्य पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि इस के अन्तर्गत सामान्य रूप से वचन[1], गज़ल अथवा गीति काव्यों का उदय हुआ है। वचन और गज़ल मूल रूप से कविता के लक्षणों के विधान के प्रतिकूल हैं एवं इनमें कवि एक-एक पद्य अथया वचन के चार-चार पद्यांशों में अपने भावों की अभिव्यंजना करता है। काव्य की इस विद्या में एक पद्यांश का दूसरे पद्यांश से सम्बद्ध होना आवश्यक नहीं होता है। मसनवी[2] अथवा मरसिया[3] लम्बी कविताएं होती हैं जिनकी रचना नैसर्गिक होने की अपेक्षा किसी घटना के विवरण पर आधारित एवं मेकानकी होती है। यह बात सत्य है कि इन वचनों, वाखों एवं गीति काव्यों में कुछ अंश ऐसे भी प्राप्त होते हैं जिनमें कविता के चिन्ह देखने को मिलते हैं। उदाहरण स्वरूप 'गुलरेज़' नामक कविता में वर्णित अरुणोदय के दृश्य को यदि पृथक् कर लिया जाये तो यह सहृदय पाठकों को प्रकृति के उद्दाम विलास से युक्त कविता का आस्वादन कराता है। इसी प्रकार वचन और गज़लों के कुछ पद्य उदाहरण के लिए ललेश्वरी का "... आमिपनु सोदरस नाविछस लमान..." अर्थात कच्चे धागे की सहायता से मैं नौका को खींचती हूं; अथवा कवि रसूलमीर की कविता का पद्य "अनिगटि वनिनम......" अर्थात् "अंधेरे में कहा मुझ से " कवि के भाव का आद्यन्त परिचय देती हैं। तथापि काव्य की विविध विधाओं की परिभाषा को दृष्टि में रखते हुये इन उद्धृत पद्यांशों को का नाम नहीं दिया जा सकता है। यहां पर यह कहना असंगत नहीं होगा कि आधुनिक कविता का रंग और रूप आंगल कविता से प्रभावित होकर वर्तमान

---

१. वचन और वाख को मुक्तक काव्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। मुक्तक काव्य की विशेषता यह है कि उसमें एक ही पद्य में रसकी पूर्ण अभिव्यक्ति अथवा किसी विषय का सांगोपांग चित्रण होता है। प्रत्येक पद्य अपने में स्वतन्त्र होता है तथा उसे समझने में पूर्वापर प्रसंग की अपेक्षा नहीं रहती है। मुक्तक काव्य के ये लक्षण कश्मीरी वचन एवं वाख पर पूर्णरूपेण लागू होते हैं। अतः इन दो को भी यदि मुक्तक काव्य के अन्तर्गत ही रखा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

२. इस में किसी घटना का सांगोपांग वर्णन होता है।

३. मरसिया वे कविताएं होती हैं जो किसी की मृत्यु पर लिखी जाती हैं।

शती में आवर्धित हुआ है। उर्दू काव्य में आंगल कविता के सदृश्य भावों का चित्रण १९वीं शती में उस ऐतिहासिक क्रान्ति, जिसे १८५७ का युद्ध भी कहा जा सकता है, के पश्चात् स्वीकृत हुआ। जब आंगल साहित्य के नमूने भारत के विद्या प्राप्त विद्वानों के समक्ष आए, मुहम्मद हसन आज़ाद एवं अलताफ़ हुसैन हाली ने कविता को उन्नति के पथ पर आगे बढ़ाने के लिए प्रशंसनीय कार्य किया और इसके उपरान्त काव्य की यह विधा समानरूपेण उन्नतिशील रही।'

कश्मीरी काव्य में जहां तक इस (कविता की विधा) के अनुष्ठान का सम्बन्ध है इस विषय में यह कहना अनिवार्य होगा कि इसका प्रारम्भ २०वीं शती के प्रारम्भ में आज़ाद एवं महजूर से हुआ। इन कवियों ने उर्दू एवं आंगल भाषा में कविता के तत्वों को पूर्णरूपेण पहचान लिया था। आज़ाद की "दरियाव" एवं महजूर की "संगरमालन प्यव प्रागाश", दो ऐसी प्रसिद्ध कविताएं हैं जो उत्तम उदाहरण के रूप में कविता के लक्षणों का परिचय देती हैं। यह बात स्मरणीय है कि इन कवियों ने अपनी उपर्युक्त कविताओं में उसी भाव की अभिव्यंजना की है जो उनके मस्तिष्क में आया था। यहां पर इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि क्योंकि इन दोनों कवियों का मस्तिष्क २०वीं शती की परिस्थितियों से अवगत था पर ये पर्याप्त सीमा तक घटनाओं का सार्थक वर्णन करने में भरोसा रखते थे। इस का प्रमाण हमें उक्त कवियों द्वारा विरचित कविताओं के अग्रलिखित पद्यों में मिलता है, यथा, "यिवान छम ज़िन्दगी हुन्द सोज़......[1]" तथा "संगरमालन प्यव प्रागाश[2]" ये दोनों ही कविताएं कल्पना के पुट को आवर्धित करने की अपेक्षा चित्रित की गई विभिन्न मूर्तियों के चित्रों से युक्त चित्रपट के समान प्रतीत होती हैं। इस प्रकार ये कविताएं काव्य की एक नई विधा पर प्रकाश डालती हैं जो १९४७ ई० के पश्चात् आवर्धित हुई एवं धीरे-धीरे स्थायी रूप धारण करने में सफल हुई।

कवि आज़ाद का मन्तव्य है कि प्रत्येक अर्वाचीन साहित्य प्राचीन साहित्य के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध होता है। इनका यह कथन इनकी अनुभवशीलता को स्पष्ट कर देता है।

कवि आज़ाद उन्नति प्रिय एवं स्वतन्त्र विचारों के कवि हैं। वे समाज के उतार चढ़ाव एवं अनैतिकता से पूर्णरूपेण अवगत हैं जिसके फलस्वरूप उन का

---

१ आज़ाद की कविता 'दरियाव' से उद्धृत।

२ महजूर की कविता संगरमालन

हृदय सौन्दर्य व प्रणय के काल्पनिक विषयों के प्रति वितृष्णा से भर गया है और देश प्रेम एवं मानवीय मूल्यों के प्रति ही उनके हृदय में प्रेम की भावना जागृत हुई है। मानवीय संवेदनाओं अथवा मूल्यों एवं अपने देश के प्रति उनके हृदय में जो प्रेम की भावना है वह अत्यन्त घनिष्ठ एवं चिरस्थायी है। उन्होंने अपने नेत्रों से भोले-भाले ग्रामवासियों की लूट मार एवं उन पर किए जाते अत्याचारों को देखा था। नष्ट हुए उन लोगों की अवस्था को देखकर उनका खून खौल जाता था। उनकी यही कामना थी कि लोग परतन्त्रता की जंजीरों को काट फेंक कर स्वतन्त्र एवं सम्पन्न जीवन व्यतीत करें। इस प्रकार आजाद के ये विचार तत्कालीन परिस्थिति का ज्ञान कराने में सहायक सिद्ध होते हैं। उक्त कवि की सारी उक्तियां पद्यांशों में नहीं मिलती हैं। सामाजिक उलट फेर पर आश्रित इनकी कविताएं कश्मीरी में एक नूतन लययुक्त एवं सुरीले काव्य को जन्म देने की अपेक्षा कवित्व सौन्दर्य से रिक्त (हीन) हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि आजाद अपनी रचनाओं में शब्दों का निस्संकोच प्रयोग करते हैं। उनकी वस्तु आदर्शवादी है।

महजूर आजाद की अपेक्षा उच्चकोटि की काल्पनिक काव्यकला का स्वामी है। उसने अपने विचारों में माधुर्य एवं संजीदगी को अपने रक्त के साथ मिला कर अनुभवशीलता के रूप व सौन्दर्य को प्रज्वलित किया है। महजूर का काव्य कश्मीरी लययुक्तता का परिचय देता है। यह लययुक्त अभिव्यक्ति उनकी मानवता की गहराइयों से उद्भूत होकर प्रकट होती है। उनका काव्य और विशेष कर कविताओं का एक मात्र श्रेष्ठ उनकी तत्कालीन उनकी नैतिक विचारों के प्रति जागरूकता एवं इनकी गहराइयों तथा गौरव (उच्चता) का परिचय देती है। इस दृष्टि से कवि महजूर नूतन विचारों का मालिक है किन्तु यह बात स्मरणीय है कि अपने समय की काव्यकला अथवा जानकारी किसी भी दशा में कवि के गौरव (श्रेष्ठता) की ज़मानत प्रदान नहीं करती है। सामयिक कला भी उसी अवस्था में कवित्व गौरव को प्राप्त करती है जब वह काल्पनिक अनुभवों की अभिव्यंजना करती है। महजूर की कविताएं प्राय: कतिपय राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति करती हैं। कला की दृष्टि से ये कविताएं अत्यधिक दुर्बल हैं। इन कविताओं में शब्दों का अनावश्यक प्रयोग हुआ है एवं इनमें भावों की नैसर्गिक अभिव्यंजना नहीं हुई है। "बचाव कोंवसलस कुन"; "जंगी तरान" एवं "नव कशीर" जैसी कविताएं इन दुर्बलताओं एवं विशेषताओं का उदाहरण

प्रस्तुत करती हैं। तथापि इस कवि की कतिपय कविताएं उनकी उत्तम काव्य कला का परिचय देती हैं। 'संगरमालन' कविता में उन्होंने घटा (अन्धेरा), प्रकाश, जवाहिरात एवं संगरमाल (एक पुष्प) जैसे शब्दों का उपमान के रूप में प्रयोग किया है। उनकी कई कविताओं की एक और विशेषता उसकी तानानिगारी है। कवि इस कला का प्रयोग उस समय करता है जब उसकी काव्य कला गौरवान्वित होती है। उक्त कवि की इस प्रकार की कविता, उदाहरणार्थ 'आज़ादी', एक बुद्धिमान एवं अनुभवशील कवि की झूठी हंसी (विषैली हंसी) है।

यि आज़ादी छय सौरगुच हूर फेर्‌या खान बखानय ।
फ़क़त केन्चन गरन अन्दर छय मारा न ग्रायि आज़ादी ॥

अर्थात् यह स्वतन्त्रता मानो स्वर्ग की अप्सरा है जो एक घर से दूसरे घर फिर रही है। यह स्वतन्त्रता केवल कुछ ही घरों में डेरा जमाए बैठी है।

सन् १९४७ के उपरान्त सम्पूर्ण देश के समान ही कश्मीर के भू भाग में भी एक नए ऐतिहासिक एवं नैतिक युग का प्रादुर्भाव हुआ। इस युग में नवीन नैतिक एवं सामाजिक समस्याओं ने जन्म लिया। देश में आंगल शिक्षा शुरू होने से साहित्यकारों एवं कवियों को नवीन संस्कृतिक चेष्टाओं, साहित्यिक रुझानों एवं नूतन साहित्यिक अभिव्यंजना की जानकारी प्राप्त हुई। मोटे तौर से साहित्यिक विचार के लिए एक नए सार्थक एवं परिणाम प्राप्त करने वाले युग का श्रीगणेश हुआ (इस परिवर्तनशील स्थिति के साथ कश्मीरी काव्य समान रूप से बराबरी करता रहा एवं अपनी स्वतन्त्र एवं स्वाभाविक विद्यमानता का परिचय देता रहा। यह बात सर्वसम्मत है कि १९४७ के पश्चात् यहां मार्क्सवाद का आयोजन हुआ और इसके उपरान्त दस-बारह वर्षों तक की कश्मीरी कविता का अवलोकन करने पर अत्यन्त निराशा ही हाथ लगती है। इस युग की कविता सामग्री एवं आकार की दृष्टि से किसी बड़ी उन्नति अथवा परिवर्तन को नहीं दर्शाती है। ये सामान्य रूप से प्रशंसापरक कविताएं हैं जो सुर लहर के गौरव की अपेक्षा अन्दर से खाली हैं। ये कविताएं किसी स्फुट अभिप्राय को लक्ष्य करके लिखी गई हैं। इन में शब्द आधिक्य नहीं है तथा इनमें चित्रकारी आदि का कोई चिन्ह विद्यमान नहीं है, यथा—

बु मेहनत कश छु पैदावार म्योनुय
जमीन आसमान म्योनुय समसार म्योनुय
छु रोशन जोशवुन नवुनार म्योनुय

अर्थात् मैं परिश्रमी हूं यह सारी उपज मेरे परिश्रम का फल है। यह धरती मेरी है, यह आकाश मेरा है और यह सारा संसार मेरा है। इस प्रकार परिश्रम से जो सफलता प्राप्त हुई है वह हम लोगों की मेहनत का ही परिणाम है।

बनावुन नोव निज़ामा नोव ज़माना
नोवुय इनसान बनावुन नोवुय जहाना

हम ने नई रीत चलानी है तथा नये जमाने की सृष्टि करनी है। प्रत्येक मानव के मन में जागरूकता पैदा करनी है। अत: इस प्रकार हमने नये जहां की सृष्टि करनी है।[1]

खून साने चूनि दामानस जरान जागीरदार
ज़ून गाशन सोन गम खासुय वरान जागीरदार

अर्थात हम बेचारे किसान दिन रात मेहनत करके पैदावार को बढ़ाते हैं और हमारे इस परिश्रम का फल जमीनदार भोगते हैं और हमारी मेहनत से वे माला माल हो जाते हैं[2]

कमन दर दिलन नुन्दुबान्यन अज़ीज़न
तमन्ना दिलुक रावरावान गरीबी

अर्थात् कितने ही सहृदयों एवं प्रियजनों की इच्छाओं व आशाओं पर एक गरीबी पानी फेर देती है।[3]

अमी किज वौथत थौद इनसानु अख अख मूल अलरावुन
तलुक प्यठ करत, अथ प्रोनि निज़ामस आसमान हावुस

अर्थात् हे मनुष्य ! तुम ऐसे निढाल से क्यों पड़े हो। उठो और जागरूक बन कर पुरानी रीत को समाप्त करके नई रीत चला कर सब में जागरूकता पैदा करो।[4]

यह बात ध्यातव्य है कि उन्नतिप्रियता (के निश्चित सिद्धान्त) के अनुसार जो कविताएं लिखी गई उनसे दो ध्यातव्य बातें ज्ञात होती हैं। पहली यह कि कश्मीरी कवियों के मन में पहली बार अपनी संस्कृति एवं साहित्य के प्रति सच्ची भावना पैदा हुई। दूसरी यह कि कश्मीरी कवियों को इस बात की आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि वे सम्पूर्ण देश एवं विश्व के साहित्य की जानकारी प्राप्त

---

1. 'रोशन' कविता से उद्धृत
2. राही कवि की कविता से उद्धृत
3. आसी कवि की कविता से उद्धृत
4. कवि अम्बरदार की कविता से उद्धृत

करें। इस से कश्मीरी काव्य में कला की दृष्टि से नये भाव प्रज्वलित होने लगे। यह शौक उन अनुवादों से भी उन्नति के पथ पर बढ़ता गया जो दूसरी देशी एवं भाषाओं की रचनाओं से किया गया वर्तमान समय में अनुवाद का कार्य आज़ाद ने सुव्यवस्थित ढंग से पूरा किया है। उन्होंने इकबाल की कविता ''शिकवा अबलीस'' कश्मीरी भाषा में अनूदित की है। मुही-उद-दीन हाजिनी ने 'मुसदस हाली' जैसी लम्बी कविता का अनुवाद किया है। टैगोर के कुछ विचारों एवं भावों को भी कश्मीरी भाषा में अनूदित किया गया है। आंगल नाटककार शेक्सपीयर के नाटकों के कुछ भाग तथा कवि कीट्स की कविता ''बुलबुलसकुन'' का भी कश्मीरी भाषा में अनुवाद किया गया हैं।

श्री दीना नाथ नादिम प्रगति शील कवियों में सर्वोत्कृष्ट माने जाते हैं। उन्होंने सत्य निष्ठा एवं निष्कपट भाव से सामाजिक वर्गों की रीतियों की बुराइयों, क्रान्ति एवं अपने वतन व मज़दूर वर्ग पर कविताओं की रचना की। परन्तु इन कविताओं में कला नियन्त्रण एवं सब्र की अपेक्षा भावुकता की प्रमुखता उनकी दुर्बलता की द्योतक है। उन की यह हृदयावर्जक अभिव्यञ्जना उन की दुर्बलता एवं सामर्थ्य दोनों का ही परिचय देती है। दुर्बलता का इस रूप में कि वह, एलियट के कथनानुसार, स्वाभाविक भावाभिव्यञ्जना में विदेशी तरीकों को नहीं अपनाते हैं। इसका लाभ यह है कि उन के कहने का ढंग वज़नदार बन जाता है और कश्मीरी काव्यकला में एक नया आयाम प्रकट होता है।

उल्लेखनीय है कि १९६० के उपरान्त कवि नादिम ने कुछ नई कविताओं की रचना की। यथा ''नावद तु ट्यठव्यन'', 'लखच त लखचुन'' अथवा ''कोठय दरवाज़ प्यठ गर ताम''। ये कविताएं सचमुच नादिम के कला सौष्ठव का परिचय देती हैं। इन कविताओं में मानवीय मूल्यों की बरबादी का वर्णन मार्मिकता से किया गया है। कभी-कभी वे स्वप्नों में कांच के टुकड़ों को इकट्ठा करके शीश महल सुसज्जित करते हैं अर्थात् कभी-कभी उक्त कवि कल्पनाओं के प्रांगण में ही विचरण करता रहता है। लेकिन समय की कठोर वास्तविकता उसकी हंसी उड़ाती है। इन कविताओं में नादिम अपने अन्तस की गहराइयों एवं नूतनता के अतिरिक्त अपने अनुभवों के मनोरंजक भावों को भी समेट लेता है। वह समानताओं एवं लक्षणों को अपने सन्दर्भ में सुसज्जित करके अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। यथा—

अन्दि पेरिव सौंदराह शीशेनागस

पम्पोशस थन प्योभुत ब्रमा

अर्थात् शेषनाग के चारों ओर पानी ही पानी है और उस में विकसित कमल से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए हैं।[1]

हे दम गव वौलु दोरा मुचराव

वाव् रिङ्ग यियि द्यव कुनि केन्छा

छव यिम् ज़ोज पथट प्यन वौनकुन

अर्थात् दम घुटता जा रहा है अतः खिड़की खोल दो ताकि बाहर की वायु भीतर आ सके और ये मकड़ियों के जाले नीचे भूमि पर गिर जायें...।[2]

नादिम की कुछ नई कविताएं उनकी विद्वत्ता एवं काव्य यात्रा के एक नये क्षितिज का पता देती हैं। इन कविताओं में वे विशिष्ट धारणा से युक्त अपरिवर्तन शील भावों की व्याख्या को कविता का रूप देते हैं।

इसके अतिरिक्त वे क्रान्ति कारी लय को छोड़कर फुसफुसाहट में भी अपने भावों की अभिव्यञ्जना करते हैं।

अनखेन्डा अख अडगर मडगर

छोट डेरस प्यठ त्रावान गाह

गावा अख पाह मुदयाकरनस

हून्या अख पेच द्युत नस हाह

मचि् अकि तजि थेव ज़चि तर पुशरिथ

अमि ओर केमि वुछि कुस वनि क्याह

कवि के रूप में रहमान राही का परिचय १९४७ के उपरान्त हुआ। पहले दस बारह सालों तक उन्हों ने मार्क्स वाद को अपनाया। उस समय उन्होंने जिन कविताओं की रचना की वे उनकी अविकसित काव्यकला का परिचय देती हैं। वे काव्य में बृहदाकार पर विश्वास करते हैं। तथापि शब्दों के मूलयांकन का एहसास उन को पहले से ही था। इस के अतिरिक्त वह निरीक्षण के बन्धनों से पराङ्-मुखी होकर प्रस्फुटित शब्दों में मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं एवं समस्याओं पर विचार करते हैं। इस प्रकार की समस्याओं पर विचार करने की भावना उनके मन में १९६० से उत्पन हुई जब वे नवीनता के अलम्बरदार बने।

---

1. नादिम की कविता "नाबद त ट्यठव्यन"
2. जलरि ज़ोजि

स युग के प्रारम्भ से उन्होंने कई कविताएं लिखीं जो उन के मानसिक परिवर्तन एवं काव्यकला के प्रति जागरूकता का परिचय देती हैं। इनमें से "पय छु ज़ुलमात वुज़ान" : "ग्रौश तु ग्रसुन" ; "ग्रख खाब तु ग्रोही" जैसी कविताएं उल्लेखनीय हैं। इन कविताग्रों में सचमुच उक्त कवि की कवित्व शक्ति ने काफी विकास पा लिया है। "पय छु ज़ुलमात् वुज़ान" कविता काव्य सौन्दर्य का एक जीवित उदाहरण है। इस कविता की सब से बड़ी विशेषता इस का "सांक्षिप्त रूप में वर्णन" है। इस के उपरान्त जो कविताएं कवि राही ने लिखीं उस में उन की नूतन कला के विभिन्न पहलु विद्यमान हैं। विशेष कर इस पहलु का पुनः पुनः चाक्षुषीकरण होता है कि मानव सांस्कृतिक उन्नति के ग्रनन्तर भी पशु तुल्य है ग्रौर वह ग्रपनी इस पाशविक प्रकृति से दूर नहीं रह सकेगा। यथा

ग्रज़ वुछुम गौडनिचि लटि ग्रोनु
त्युथ ज़ि दौशवुय वौव्यव किनि कौरुन बुकु
पन्जन प्यठ वेलि वेलि
नक्वोरि वुफनोवि वुफनोवि (ग्रन वुछिथ)
म्यवोनुख यि ग्रोस रोति रातस टोंवरारय करान

ग्रर्थात मुझे कहा गयाकि यह पूरी रात कुत्ते के समान भोंकता रहा।[1],

एक ग्रन्य उदाहरण इस प्रकार है।

चॆय ग्रोसी दन्दति नापान
म्य ग्रासिम नम ति नौखुलि

ग्रर्थात् तुम्हारे तो दांत भी जगमगा रहे थे जब कि मेरे नाखून भी टेढ़े मेढ़े हैं।[2]

राही को साहित्य का व्यापक ज्ञान है किन्तु उनकी यह विद्या एवं ज्ञान उन्हें कभी-कभी क्लेष भी देता है। वे काव्य सौन्दर्य का उत्सर्ग कर (ग्रथवा पराङ्मुखी होकर) शब्दों को ग्राकर्षक ढंग मे प्रयुक्त करने पर बल देते हैं। इस के ग्रतिरिक्त वे कभी-कभी पूर्वकल्पित विचार ग्रथवा प्रसंग को जानबूझ कर उपमाग्रों में समेट लेने का प्रयत्न करते हैं। परिणामतः इस के बनावटी शायराना तरीके से जो कविता लिखी जाती है वह सन्दर्भ की उत्कर्षक होने की ग्रपेक्षा सामर्थ्य का परिचय देती हैं।

1.
2. कविता का उदाहरण

अमीन कामिल ने सन् १९५३ में महजूर की मृत्यु पर "शायिर मरि्या ज़ांह" नामक कविता से कश्मीरी भाषा में लिखना आरम्भ किया । कुछ वर्षों तक की (उन की) कविताएं मार्क्स के दर्शन से प्रभावित दीख पड़ती हैं परन्तु उन की दृष्टि समयानुसार परिपक्व हुई और अपने दृष्किोण का सीमाबन्धन उन को निरर्थक लगने लगा । इस का प्रमुख कारण यह है कि वे शब्दों का बेधड़क प्रयोग करते हैं । इन कविताओं में "दूरि प्रज़लय व तारुखा"; "डल तूफानस मन्ज़"; एवं "प्रानि शाहर" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

कामिल एक सहृदय कलाकार हैं । उन को वर्तमान काल में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक उन्नति के विपरीत मानव की समस्याओं एवं आध्यात्मिक व्यथाओं का काफी ज्ञान है । वस्तुत. उन की काव्य कला उनकी कुछ कविताओं में प्रस्फुटित हुई है । उन की उक्त कविताओं में भाव के प्रारम्भ एवं अन्त दोनों का पता लग जाता है । यथा—

हतसा हे वौसनव ! हम सौखन हम दमव
कांसि मा याद छुव ! तोति केन्ह ध्यान हयव

अर्थात् हे उस्ताद (ज्ञाता अथवा जानने वालो) ! आओ हम अपने सुखों दु:खों को आपस में बांट लें । क्या आप में से किसी को याद है ; कि यदि अधिक नहीं तो थोड़ा बहुत आप को ध्यान होगा ही... वस्तु स्थिति यह है कि कामिल का कवि कविता की अपेक्षा गज़ल विधा से अधिक सम्बद्ध दिखाई देता है । गज़ल में उन के नैसर्गिक भावों के कितने ही रंग प्रज्ज्वलित हुए हैं ।

कश्मीरी में नूतन काव्य को प्रारम्भ करने में गुलाम नबी फ़िराक़ ने भी अपनी रचनाओं का प्रस्तुतीकरण किया है । उनके कथनानुसार पहले–पहले वे मार्क्सवाद पर आधारित कविताओं की रचना करते थे । उन के काव्य का यह दौर सन् १९४८ से सन् १९५५ तक रहा । मार्क्सवाद रूपी जाल से मुक्त होने के पश्चात् उन्होंने "महबूब सन्ज़ि कबरि प्यठ" कविता लिखी जो इस युग की साहित्यिक विधाओं में सामग्री एवं सन्दर्भ की दृष्टि से नैसर्गिक भावाभिव्यञ्जना का जीवित उदाहरण है ।

इस के पश्चात् कवि फ़िराक़ ने काफी कविताओं में जीवन के विविध अनुभवों उदाहरणार्थ सौन्दर्य की अस्थिरता, मानव जीवन की कुण्ठाओं आदि की अभिव्यञ्जना की है । यथा

वांस छय अख सुबह छय अख शाम छय
शाम सपदिथ वन कस बोज़्यम कुस [1]

अर्थात् यह जीवन एक प्रातः है और एक शाम है। शाम होने पर मैं किसे कहूं, मेरी कौन सुनेगा।

एक अन्य उदाहरण है :—

यख लासस म्योनिस रोगि वुछख
कन डोलस म्योनि टसन करिख [2]

सत्य तो यह है कि फ़िराक़ वास्तव में कामिल के समान गज़ल लिखता है तथा गज़ल के कतिपय कवियों में उनकी नैसर्गिक भावाभिव्यञ्जना रूपी स्वर्ण प्रज्ज्वलित है। ये वास्तव में सौन्दर्य प्रिय कवि हैं जिस का प्रमाण इन की "हुसन हर रंगस मन्न नेरान नौन" कविता है। कला की दृष्टि से उनकी यह कविता बड़ी होने पर भी उनके विचारों को प्रकट करने में सक्षम प्रमाणित हुई है।

आज़िम सोच विचार कर कतिपय सामयिक प्रसंगों पर कविता लिखते हैं। उनकी कविताओं में "जिन्दगी के प्रति मुहब्बत आदि भाव छिपे रहते हैं। "हुसन त ज़िन्दगी", 'नार अमारुक' ; "कलवाल", "मन कामन त आवलन" इस के स्फुट उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त उनकी रचनाओं में आश्चर्य, गम, उदासी, मस्ती एवं तन्हाई जैसे भावों की अभिव्यक्ति हुई है। यथा -

दोन चिहन अन्दर छि सीनस गछ़ान दरवाज़ वथि [1]
फुटिमतिशि गुतलि आवलि बासान
तथ मसवल मोसम प्राचन प्यठ[2]

गुलाम नबी खयाल ने भी बहुत सी कविताओं की रचना की है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे आधुनिक कश्मीरी काव्य में अलग सुरताल एवं भाव की कविता लेकर उपस्थित हुए हैं। यह भाव वैराग्य एवं जज़्बात के भड़काव का परिचय देता है। ख़याल की कविता "शमात शोयर" में कवि अकेले पन में रात के अन्धेरे में शमा को आपबीती सुनाता है। इस कविता के

1. यम्बरज़ल कविता
2. नाम हरम छुन
1. हुसुन त ज़िन्दगी कविता
2. अड चटि वामन

प्रत्येक पद्य में भावों की मार्मिक अभिव्यञ्जना हुई है ।

कम गुलबदन खाक़स रल्यायि,
शुन्याह वनेय वाम खान तय ।
संसार किस अथ गरदिशस
छेपि लगि स्यठाह ज़ाना न तय ।।

अर्थात् कितने ही गुलबदन मिट्टी में मिल गये और कितने ही भवन (महल) नष्ट हो गये । संसार की गर्दिश में कितने ही माशूकों की जान चली गई ।

गुलाम नवी ख़याल की अन्य कविताएं, उदाहरणार्थ, "खावन हन्दि सराव, नारकि सरान, खला वानाख" आदि कवि की घनिष्ठ एवं शुद्ध भावना से उद्भूत हैं ।

गत दस बारह वर्षों में जिन कवियों ने कश्मीरी काव्य को आगे बढ़ाया उन में चमन लाल चमन, गुलाम रसूल सन्तोष, रशीद नाज़की, मखन लाल बेकस, फ़ारुक नाजकी, मखन लाल कौल, मुही-उद्-दीन गौहर, राधे नाथ मसरत, मोती लाल नाज, मरग़ूब बानिहाली, रसूल पोम्पुर आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । इन कवियों की कविताओं पर एक सरसरी दृष्टि डालने से पता चलता है कि ये सामान्य रूप से उन्हीं सन्दर्भों को लेते हैं जो कश्मीरी काव्य में १९४७ के पश्चात् प्रकाश में आये । स्थिति यह है कि इन कवियों को आधुनिक परिस्थितियों का गहरा ज्ञान है तथा ये जिन्दगी एवं अपने वर्ग की विभिन्न समस्याओं को अपनी रचनाओं का विषय बनाते हैं । यहां पर यह बात ध्यातव्य है कि कवियों की इस श्रेणी में कोई एक कवि भी उत्कृष्ट कोटि का नहीं गिना जाता है । दूसरी बात यह है कि इन की कविताएं सामग्री की दृष्टि से किसी भी क्रान्ति अथवा सामाजिक उलट फेर आदि का परिचय नहीं देती हैं ।

फिर भी यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि गत पांच या दस वर्षों में नवीन पीढ़ी के अनेक सशक्त कवियों ने जन्म लिया । यह बात उत्साहवर्द्धक है कि आधुनिक युवा पीढ़ी के इन कवियों में भी कविता की कला का सुव्यवस्थित ज्ञान विद्यमान है । पुरातन कवियों ने तो अपनी रचनाओं में केवल शब्द भण्डार को इक्ट्ठा किया है और उनका अध्ययन करने वाला पाठक कुछ और न सही, लेकिन सिर दर्द तो अवश्य मोल लेता है ! लेकिन युवा पीढ़ी के कवियों की रचनाओं का अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि ये कवि इतने क्रूर नहीं हैं क्योंकि ये कवि अपने भावों की अभिव्यक्ति स्पष्ट किन्तु संक्षिप्त शब्दों में करने में ही विश्वास

रखते हैं। इन आधुनिक कवियों में गुलशन मजीद, गुलाम अहमद ग़ाश, शफ़ी शौक़, रफ़ीक़ राज़, इकबाल, अकबर, सजूद सैलानी, मन्जूर हाशमी आदि उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार नई कविता वैज्ञानिक एवं यान्त्रिक उन्नति के परिणाम में नई उलझनों एवं समस्याओं से युक्त मानवीय तौर तरीकों का अधिक गहराइयों से मुकाबला करती है। दूसरी बात यह है कि ये कविताएं विस्तृत व्याख्या की अपेक्षा चन्द शब्दों में ही अपने भाव की व्याख्या करने का प्रयत्न करती हैं और इस प्रकार कश्मीरी कविता प्रतीकात्मक चरित्र ग्रहण करने की कोशिश कर रही हैं।

●

अनुवाद : सत्यभामा राज़दान

# कश्मीरी गज़ल

—गुलशन मजीद

ग़ज़ल पर मेरा यह प्रबंध कोई ऐतिहासिक समीक्षा नहीं। मसलन मैं यह कहूंगा कि रसूल मीर की ग़ज़ल (और इसी बहाने यह भी कि सारी क्लासिकी कविता) गुलाम नबी फ़िराक़ की ग़ज़ल की तरह वर्णन की उपस्थिति की कविता है, दीनानाथ नादिम की ग़ज़ल की तरह एक शब्द में से दूसरा अनुप्रासंगिक शब्द पैदा होने की स्थिति की कविता है, अमीन कामिल की ग़ज़ल की तरह चलबिंब की कविता है और महजूर की ग़ज़ल की तरह दुनिया को विभिन्न वस्तुओं का संकलन समझने की न कि अनंत सत्यों का आवागमन समझने की कविता है। (दुनिया के बारे में यह सत्य कि यहां अमुक तथ्य हैं, न कि अमुक चीजें यह आधुनिक चिंतन है) और आपका यह समझना कि रसूलमीर हमारी आज की ग़ज़ल का बाबा है, जल्दबाजी होगी।

हमारी (कुल मिला कर सारी) क्लासिकी कविता अपने विशेष रूपक-प्रबंध के बावजूद सीधे तौर पर अभिव्यक्ति की कविता है और इसका टैक्सचर किसी मन: स्थिति या अनुभव को घटनाओं के ताने-बाने में विस्तार देता है। आज ग़ज़ल ने जो रूप प्राप्त किया है उसके हिसाब से इस काल की सभी गजलें अपने आवरण और स्वभाव से अग़ज़लें हैं। हमारी इस क्लासिकी ग़ज़ल में कुछ मशीनी तथा मनोवैज्ञानिक अभाव हैं। राही साहब तक आते आते यह एक मशीनी प्रक्रिया या कालीनबाफी की सी कला बन गई थी। राही ने हमें "नव रोज़ि सबा" में कुछ शानदार रूपात्मक जैसे दृश्य बिंबों की ग़ज़लें दी हैं। फ़ाखिर और महमूद गामी से महजूर तथा नज्म के कवि नादिम तक यह ऊंचे स्वर में गाई जाने वाली ग़ज़ल का उदाहरण है :—

छायि दिल ह्‌यथ कोर चोल हम माहितावान ए सनम
आयि चाने आशकन गव दिल परेशान ए सनम

ए सनम, चांद उजले ! दिल मेरा चोरी छिपा के कहां ले चले ?

तुम्हारी एक अदा से आशिकों का दिल परेशान हो गया।

कोमल, धीमा, गतिहीन लहजा तथा सांफिस्टिकेशन, जो ग़ज़ल का मिज़ाज है, गज़ल को, कामिल साहब से मिली। एक बार गज़ल का यह आधारभूत मिज़ाज़ निश्चित हुआ तो गज़ल को नई दिशाएं तथा संभावनाएं मिलीं और अब गज़ल एक वह अतिव्यक्तिगत अनुभव है, जो परोक्षरूप में अपनी अभिव्यक्ति करती है। इस व्यक्तिगत अनुभव में श्रोता इस तरह सम्मिलित है कि इसकी शक्ल प्रश्न उठाने वाली सी है। प्रश्न वाली शक्ल कोई एकरूप, एकातम और जानी पहचानी शक्ल नहीं है बल्कि इसके बहुत रूप हैं, मसलन :

- एक शेर में व्यक्त रूप में एक दूसरे के प्रतिद्वंद्वी विषम बिंब या अंतर्कथाएं
- उपमाओं तथा रूपकों से विषय की विलोड़न जनक धारणा
- एक सुसंगठित तनाव उभार कर छंद, तुक और अरूप विषय के बीच विरोध पैदा करके
- तार्किक और व्याख्यात्मक अर्थों के बीच सम्बन्धों को तीव्रता देकर
- ऊंचे स्वर में आत्मालाप

आज की शायरी अर्थ का वह ध्वन्यात्मक स्वर है जो समयातीत है और वर्तमान गज़ल की यह एक बड़ी विशेषता है कि यह वर्णन की शायरी नहीं बल्कि वर्णन के रूप की शायरी है। यह चल-शब्दों की वह स्थिति है जिसमें विभिन्न समस्याएं और स्थितियां चित्रित होती हैं। इसकी दूसरी विशेषता है इसका बेतकल्लुफ़ स्वर। बेतकल्लुफ़ स्वर की परम्परा कामिल साहब ने शुरू की मगर संयोग यह है कि हमारे अधिकांश कवियों ने यह परम्परा ऐसे पाली जैसे कि यह तीसरे दर्जे का मजाक हो। राही, आजिम, फ़िराक़ और शौक़ इस परम्परा की रक्षा किए हुए हैं। मग़ूब बानिहाली, मश्ल सुलतान पुरी, काज़ी गुलाम मुहम्मद देखने में इस सरल स्वर के दीवाने नहीं हुए।

नई गज़ल की एक यह भी विशेषता है कि यह संदर्भ पुस्तकों के यथार्थ से मुक्त है। (यह नई नज़्म का गुण भी है) इसका शुद्ध यथार्थ इसका आंतरिक साम्य और संतुलन है, यद्यपि हमारे दो महत्त्वपूर्ण गज़लगायक मश्ल सुलतानपुरी तथा मरग़ूब बानिहाली अपनी कविता की सम्पत्ति यही संदर्भ संकेतों का सत्य मानते हैं। अनुभव तथा बिंब अपने काव्य संसार में ही सत्यात्मक तथा वैज्ञानिक हैं। अनुभव तथा बिंब का मूल्य बहिर्जगत में ढूंढना काव्य के सौंदर्यबोध का

अज्ञान है। मुहीउद्दीन हाजिनी साहब इस अज्ञान के शिकार तब हुए जब उन्होंने अपनी 'मक़ालात' पुस्तक में राही का—

डोल हकीकच् रंग त प्रजल्यव खाव म्योन
अम्य सरावन हों सगठय वैरान तय।

अर्थात् यथार्थ कुछ विवर्ण हुआ तो मेरा ख्वाब प्रज्वलित हुआ। इसी मृगतृष्णा ने वीरानों को सींचा है। विषयगत संसार के तराजू में तोला और हल्का घोषित किया। यहां मैं अर्ज़ करूं कि काव्यतर्क अनिवार्य वैज्ञानिक नियमों-विधियों का पाबंद नहीं होता। जब वैज्ञानिक बंधन होंगे तो वैज्ञानिक समाजवाद के भी और तब धर्म शास्त्र के भी होंगे...गज़ल गेय समस्यात्मक तर्क है।

तर्क जो राही साहब के पास महत्वपूर्ण तत्व नहीं है, मश्ल, नाज़िर और मरगूब साहब के पास संप्रेषण की समस्या बन जाता है और इसे ये कामिल के लचकदार स्वर की सहायता से निभा देना चाहते हैं। गुलामनबी नाज़िर की शायरी में तर्क बहस का रंग लेता है। चूंकि फ़िराक़, नाज़िर, गौहर आदि की शायरी रूपकात्मक है लिहाज़ा बहस सीमा में ही रही है और हुज्जत नहीं हो सकी। कामिल में यही बहस क्लिष्ट कथन बन जाती है। सन्तोष और गौहर की गज़लें बौद्धिक तर्क पर आधारित होती हैं। ये अपने काव्य विषय को बाहर की दुनिया में प्रचलित कायदे-कानूनों का अधीन समझते हैं। इनकी गज़लों में शब्द चीज़ का बदल है या प्रतिनिधि है और रूपक का अर्थ है लोगों को जंगल बतलाना। दीना नाथ नादिम साहब की नज्म जितनी तर्क तथा बहस के अधीन है, उनकी गजल उतनी ही मुक्त है। शब्दाडंबर तथा केवल रूप की एक अतिवादी मिसाल। कोई भी अनुभव या बिंब केवल शब्दों के जादू में बंधा है।

गज़ल का एक और ज़रूरी गुण लचकदार स्वर है। राही की गज़ल में यह लचक नहीं है। इससे इनकी गज़ल का टाइप बनना संभव था। मगर इस जगह काव्यगत रूपहीनता इनके काम आ गई। राही ने गज़ल के प्रचलित चालू मुहावरे को बदलने के लिए कुछ नये प्रयोग किए जिन का उदाहरण मैं इस शे'र से दूंगा—

नीलिस फ्रेमस मंज सबज़ सबज़ शिव लिंग
पारुद पारवती व्यगलान अख अख अंग

अर्थात् नीले फ्रेम में हरा हरा शिव लिंग है। पारद की पार्वती का एक एक अंग पिघल रहा है। राही शब्दों के अनभ्यस्त प्रयोग तथा क्रम से (जो इनके काव्य-

तर्क का एक महत्वपूर्ण तरीका है) गजल के लिए आवश्यक भावनात्मक सामग्री तथा वातावरण उपलब्ध कराते हैं। राही, यथाशक्ति शब्द, वाक्य, प्रतीक वगैरह ऐसे आपस में समिश्रित करते हैं कि शे'र की एक स्वीकार्य व्याख्या असंभव हो जाती है। संभव संकेतों की बात इसी में आ सकती है। इस प्रकार राही की शायरी में अंगनिरूपण विवेचन की वस्तु ही नहीं। इसका हर बिंब इसीलिए अर्ध प्रकाशित तथा रहस्यमय है। दृश्य चित्रण के लिए इसमें कोई जगह ही नहीं। उदाहरणत: यह अकेला मिसरा—

अंग अंग वुछमस सीमिनि जफ

[मैंने उसके अंग अंग को शेरनी की उछाल (सा) देखा।]

इनकी धारणात्मक दुनिया की एक स्पष्ट विशेषता है। किसी अनुभव में दृश्य चित्रण का बदल ढूंढना और इस तरह भावनात्मक तनाव या तीव्रता पैदा करना हमारी काव्य परम्परा है, जिनके उदाहरण हब्बा खातून, रसूलमीर, रहमान डार पेश कर सकते हैं, इस काव्यपरम्परा का लाभ वर्तमान काल में दीना नाथ नादिम, फ़िराक़, नाजी, शाद तथा कुछ अन्य कवियों ने उठाया। (किसी ने ज़्यादा, किसी ने कम; किसी ने सचेत किसी ने अचेत)

सुब हचि प्रेवि मछि अथशर शायद अथन्यून टूर्यन नालस कुन (नादिम)

सुबह की किरण से शायद गलती हो जाए। उसने कलियों के गले की तरफ हाथ बढ़ाया।

बति आसहा मंज़ सडकि प्रारान पोशि हलम ह्यथ
अथ सोंथ यपोय्र आव मगर हांठ नजर ह्यथ (फ़िराक़)

मैं भी बीच सड़क के, फूलों को दामन में समेट कर होता
इधर से हर बसंत गुज़रा मगर बांझ नजर लेकर गुज़रा

आसि मा केहं जदव बचोवमुत ज़ांह
यथ मकानस द्वसन खनिव काछाह।

शायद हमारे किसी पूर्वज ने कभी कुछ बचाया हो। कोई इस मकान की दीवारों को खोद डालो। जाने दृश्यांकन का आत्मपीड़न से क्या सम्बन्ध है कि हमारी गज़ल में पीड़ावाद के नमूने इन दृश्यचित्रक कवियों में ही मिलते हैं। काव्य-प्रमेय (Hypothesis) गढ़ने का वह ढंग जो कामिल की गज़ल में हमारी जीवन-प्रवृत्तियों को एक आइरनी (विडंबना) बनाता है राहीकी गज़ल की क्लिष्टता संतोष, नाजी, फ़िराक, एस० राजी, गौहर की गज़ल में अहंम्मन्यता के अंदाजे से सम्बन्धों का आधार है।

व्यंग्य यद्यपि सम्बन्धों का आधार है मगर इस में मिठास तथा सूक्ष्मता तभी पैदा होती है जब कामिल की तरह सम्बन्धों के बीच भी असम्बन्ध का आभास हो। असम्बन्ध कलाकार को एक विस्तृत कैनवास और बेतकल्लुक लहजा प्रदान करता है। बेतकल्लुक लहजे या स्वर की मिसाल कामिल की गज़ल है और वह सामान्य भाषा या रूपकहीन वर्णन से नहीं आता, बल्कि अनावश्यक संयोजन के बगैर रूपक से या गतिशील शब्दावली से आता है। राही की 'नवरोज़ि सबा' में जो भी गज़लें हैं वे अनावश्यक संयोजन की गज़लें हैं और कविता पर विचार के आरोपण की गज़लें हैं। बेतकल्लुफ लहजा, स्वालाप का अंदाज, आपसी बात-चीत का रंग जो आज राही की भी गज़ल के गुण हैं, मूलत: कामिल से शुरू होते हैं —

चय छख कायिम मेय डोल ख्वर
अव च्येय ज़्यूनुथ अव मेय होर।

[स्थिर तुम्हीं हो, पैर मेरा ही फिसल गया। जी, तुम ही जीते; हां, मैं ही हारा]

कामिल ने गज़ल में लचकदार लहजे की एक और परम्परा शुरू की, पर यह परम्परा आगे नहीं चली क्योंकि यह लहजा जिन्होंने भी अपनाया, वे अपनी लय भी खो बैठे। लचकदार गज़ल में कवि गजल को एक परिप्रेश्य में शुरू करता है और विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में से गुजारता हुआ उसे किसी और परिप्रेक्ष्य में पहुंचा देता है। पढ़ने वाले को बौद्धिक धक्का नहीं लगता। बल्कि श्रोता तब बिखर जाता है जब वह कामिल के लहजे को अपनाने वाले आतश या आजाद की गज़ल पढ़ता है। इस हिसाब से तो शफी शौक़ सावधानी बरतने लगता है। उसने राही, कामिल की विशिष्ट शब्दावली या प्रेषण-वृत्ति से फायदा उठाया मगर अपनी आवाज़ नहीं बदली। शफी शौक़ व्यंग्य की सीमाएं भी जानता है इसलिए वह सावधान रहा। नहीं तो व्यंग्य बरतते बरतते हमारे अधिकांश शायरों और मसखरों में कोई अंतर ही न रहे।

मे पुशरिथ वापसय सुयपान वापस
चलिग शैतान तय यज़दान वापस।
मे थोवहम मंजिलाह अख शांद पानस
वतव आखिर वटिथ न्यू पान वापस। (शौक)

मुझे मेरा वही शरीर लौटाकर शैतान और प्रभु दोनों लौट गए। मेरे लिए मेरी एक मंजिल सिरहाना बनाकर राहों ने खुद को वापिस लपेट लिया। बिबांकन में

राही तथा कामिल में यह भी एक फर्क रहा कि कामिल बिंब को बलवान बनाने के लिए सर्वांग चित्रण से भरपूर काम लेता है।

शाहरूकिथ कव नम छुख चापान क्याह सा केह फरमावुन छ्य सा ?

सांस रोक के नाखून क्यों चबाने लगे ? कुछ फरमाना चाहते हैं आप ?

नौजवान शायरों में एक महत्वपूर्ण गजल गो शायर रफीक़ राज़ हैं। इनकी गज़ल का रंग रहस्यात्मक है। इनकी गज़ल को एक रहस्यपूर्ण आवरण दे देने में न सिर्फ इनके शब्दचयन का हाथ है (रचना-फ्रेम गढ़ने का अंदाज कामिल का है) बल्कि उसमें इनकी तुक योजना का भी दखल है। कामिल और राही के बाद तुक के साथ एक बहुत ही अपमानजनक सुलूक किया गया। वह यों कि इसे एक अनावश्यक चीज मानकर सिर्फ वज़न या संगीत के लिए बरता गया। मगर नवजवान गज़ल गायकों ने इस तुक को रुबाई के चौथे मिसरे का स्थान दिया जो कि पहले तीनों मिसरों के मिज़ाज और प्रभाव को निश्चित करता है। कामिल साहब के बारे में यह आम राय है कि इनके काफिये (तुकें) साधारणत: अनावश्यक तथा गीत बंदी के लिए लाए जाते हैं। यह वस्तुत: इनके शेरों को गलत समझने का परिणाम है। हमें लगता है कि इनके काफ़ियों के बिना एक प्रभाव पैदा हो चुका है. अत: काफिया व्यर्थ है जबकि यही प्रभाव इस काफिये को विडंबना का आयाम प्रदान करता है और व्यंग्यात्मक स्थिति में ला देता है। कामिल साहब ने न सिर्फ काव्य भाषा को शब्दों की अनिवार्यता से मुक्ति दिलाने का यत्न किया बल्कि गतिशील काफियों के प्रयोग भी किए. अर्थात वह शब्द काफिये के लिए प्रयुक्त किया जिसका अंतिम अक्षर गतिशील हो।

हमारे गजल कवियों ने नए संप्रेषण की संभावनाएं नहीं रचीं, जो पहले नहीं रही थीं। अर्थात ये रचनात्मक भाषा बनाने में भाषा में पहले से मौजूद संभावनाओं से बाहर नहीं निकले, बल्कि उन्होंने इन का ताज़ा इस्तेमाल किया। उन्होंने नई काव्य भाषा नहीं सरजी, बल्कि वर्तमान भाषा में ही विभिन्न प्रयोग किए —

अंग अंग वुछमस सीमिनि जफ कथ कथ वननम लोह तय शाल

मैंने देखा उस का अंग अंग शेरनी की उछाल है। उसकी एक एक बात सियार थी जो मुझ से बोली।

इन्होंने भूतकाल की काफी परम्पराओं का उपयोग किया और वर्तमान के प्रचलित शब्दप्रयोग का भी। मुज़फ्फ़र आज़िम की गज़ल में हमें साफ दिखता है

कि भाषा का व्यवहार कैसी कैसी वस्तु तथा संकेतों को जन्म दे सकता है। इनकी कविता असम्पन्नता में भी एक विशेष स्वाद देने की तस्वीर है। इसके मुकाबिले में संतोष तथा नाजी मुनव्वर की कविता अपने परिवेश से बहुत ही प्रतिबद्धता की कविता है।

कश्मीरी गज़ल के संदर्भ संकेतों का एक स्त्रोत हमारा अतीत है। अतीत की इन घटनाओं को कामिल वर्तमान स्थिति की निरर्थकता दर्शाने के लिए युगान्तरित तथा अर्थांतरि कर देता है। राही इनकी पेरोडी बनाकर इनको व्यवहृत करता है।

जिस कवि ने अतीत तथा वर्तमान की काव्यात्मक और प्रचलित शब्दावली का सदुपयोग किया और अपना स्वर पहचानने का प्रयत्न किया वह है मुहम्मद अयूब बेताब। सच तो यह है कि इन्होंने गज़ल को नई दिशाएं भी दीं। गजल में रूप या भाषा के साथ ज़्यादा छेड़खानी करने का सवाल नहीं होता, फिर भी जबान के कई तजरुबे होते ही रहे। कामिल ने इजाफ़ों (संबंध-बोधकों) का उपयोग किया और नादिम ने विभिन्न विषयों की ध्वनि, विशिष्टता या रंग बरत के विभिन्न स्वरूपी बिंब गढ़े। काजी गुलाम मुहम्मद की शायरी में से यदि शब्द अलग किये जायं तो ये बहुत ही साधारण या महत्वहीन होते हैं मगर इनके मिसरों में ये ही शब्द दृश्य तथा नास्तालजिया पैदा करते हैं।

सारांश यह कि वर्तमान गज़ल, वर्तमान अनास्था, जटिल तथा अतंहीन स्थिति के प्रभाव को विभिन्न अनुभूति बिंबों, रूपकों और कभी संकेतात्माक ढंग से भी पैदा करती है।

●

—अनु० रतनलाल शान्त

# कश्मीरी गज़ल

—रसूल पोम्पुरी

ईरान और कश्मीर के पारस्परिक सम्बन्ध अतिशय पुरातन हैं। ये सम्बन्ध शाहमीरी युग के अनन्तर दृढ़तर होते गये। जब फारसी भाषा को राज-काजी की भाषा होने का गौरव प्राप्त हुआ तो राजदरबार में फारसी के ज्ञाता फारसी कविता के प्रति भी आकर्षित हुये। इस प्रकार की उपयुक्त परिस्थितियां यहां इस्लाम के आविर्भाव के पश्चात ही फारसी भाषा एवं साहित्य को उपलब्ध हुई तथा डुग्गर राज्य तक इन का प्रचलन रहा। इन्हीं उपयुक्त परिस्थितियों के परिणामस्वरूप कश्मीरी कविता रूपी नायिका के मस्तक पर तिलक रूपी गज़ल का उदय हुआ। गज़ल मूलत: अरबी भाषा का शब्द है जिस का शाब्दिक अर्थ है "रमणियों के प्रेम की चर्चा करना एवं रमणियों के साथ वार्तालाप करना"। इसे सम्प्रति दूरत्व व सामीप्य; सौन्दर्य व प्रेम, प्रिय व लोक का शोच; प्रेम अश्रु बहाना आदि, मतलबी जीवन की मार्मिक भावाभिव्यक्तियों ने अलंकृत किया है। गज़ल की विशेषता यह है कि इस का प्रत्येक पद्य अर्थ की दृष्टि से भिन्न भी हो सकता है किन्तु 'बहर' और 'काफियारदीफ' का ध्यान रखना आवश्यक होता है। गज़ल के प्रथम छंद को अरबी भाषा में 'मतलह' एवं अन्तिम शे'र को 'मक़तह' कहा जाता है। विद्वानों का मन्तव्य है कि गज़ल में कम से कम पांच शे'र तथा अधिक से अधिक सत्रह से इक्कीस शेरों का होना लाज़िम होता है। इस नियमितता का आजतक अनुसरण हुआ है या नहीं यह एक जटिल सयस्या है क्योंकि आधारहीन प्रमाणों को स्वीकार करना जीवन की रीत नहीं है।

अरबी भाषा के कवि उपदेशात्मक अथवा स्तुतिपरक गीतों का प्रारम्भ सौन्दर्य व प्रेम की अभिव्यक्ति से करते थे जिस के कारण ऐसे गीतों को अरबी

भाषा में 'तशबेब' कहा जाता है। 'तशबेब' शब्द गज़ल का समानार्थक है। प्रस्तुत शब्द वास्तव में 'शब' से उद्‌भूत है जिस का अर्थ है "यौवन को प्राप्त होना"। चूंकि फारसी कविता का उदय भी राजदरबारों में ही हुआ अतः यह प्रथा यहां भी प्रचलित रही है जब तक कि इसके लिये यथोचित परिस्थिति का आविर्भाव न हुआ और 'तशबेब' एक पृथक् काव्य विधा न बन गई जिसे गज़ल की संज्ञा दी गई। कश्मीरी काव्य में भी इस विधा का आविर्भाव सभ्यता व संस्कृति के पारस्परिक आदान प्रदान से हुआ। चूंकि मानव के आंतरिक भावों एवं अशुभ घटनाओं की अभिव्यक्ति का उचित एवं सुलभ माध्यम गज़ल ही सिद्ध हुआ, अतः इस प्रकार का यह पारस्परिक मेल-जोल लाभप्रद ही प्रमाणित हुआ। यह इसी पारस्परिक सम्बन्ध का परिणाम है कि कश्मीरी कविता उन्नति के पथ पर आगे बढ़ती गई तथा नित्य प्रति नवीन पद्यों अथवा पद्यांशों की रचना यथावत् होती रही और आज भी इसमें नूतन ढंग से परिवर्तन होते रहते हैं। इस प्रकार कश्मीरी कविता में भी काव्य विधाओं की वृद्धि होती गई। कतअ (वह कविता जिसमें दो अथवा दो से ज्यादा पद्यांग हों); रुबाई (चार पद्यों वाली कविता जिसके प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ चरण के अन्तिम अक्षार समतुल होते हैं); मसनवी (गीतों भरी कहानी); मुसअदस (वह कविता जिसके प्रत्येक पद्य अथवा श्लोक के छः चरण होते हैं); मुखमस आदि काव्य की ये विधायें रंग उगलने लगीं। किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि इससे पहले हम कविता से अनभिज्ञ थे जिसके कारण हमारे अभिव्यक्ति रूपी वाद्ययन्त्र के स्वर शिथिलावस्था में थे।

वस्तुतः कश्मीरी कवियों ने इस से पूर्व भी प्रेम रूपी वाद्ययन्त्र के अभिव्यक्ति रूपी तारों को झनझना कर वाख (वाक्य) एवं वचुन (वचनों) की सुरक्षा (सृष्टि) की है; श्रुकों (श्लोकों) का श्री गणेश किया है जिनकी आकृति अथवा स्वरूप संस्कृत कविता से मिलता जुलता है। ललेश्वरी से पूर्व यहां कश्मीरी भाषा को लिपिबद्ध करने के लिये शारदा लिपि का प्रयोग होता था किन्तु कश्मीर में फारसी भाषा को राजकीय भाषा का गौरव प्राप्त होने के पश्चात् फारसी लिपि का प्रचलन हुआ जिस के परिणामस्वरूप कश्मीरी भाषा का सुरलय के स्तर पर (संगीतात्मकता) पहली बार संकोच हुआ और हमारी गणना गूंगे और बहरों में होने लगी किन्तु आज हम निर्भीक होकर लोक को इस सत्य से अवगत करते हैं कि हम भी शब्दों का उच्चारण करना जानते

हैं अर्थात् हम भी कुछ जानते हैं। हम बहरे और गूंगे नहीं हैं। लेकिन जिस की एक बार धज्जियां उड़ाई जाती हैं वह मुश्किल से ही विश्वास का पात्र बन पाता है। सामान्य धारणा यह है कि वचन चाहे कितना ही परिवर्तित क्यों न किया जाए उसे गज़ल की संज्ञा देना उचित नहीं है। निस्सन्देह मौलाना रोमी एवं शेख सादी जैसे उच्चकोटि के वयोवृद्ध विद्वान भी फारसी कविता में "वच्नी गज़ल" लिखने के पक्ष में हैं। जब फारसी कविता में ऐसे गीतों को गज़ल की कोटि में रखा गया तो हम इस तथ्य से किस कारण आंखें मूंद सकते हैं। वास्तविकता तो यही है कि गज़ल के लक्षणों को दृष्टि में रखते हुये गीतों तथा वचनों को गज़ल की संज्ञा देना उपयुक्त नहीं है। कारण यह है कि यह विधा अरबी भाषा की स्तुतिपरक कविता से उद्भुत होकर फारसी कविता से होती हुई वर्तमान स्वरूप में हम तक पहुंची। फारसी गज़ल का प्रेमी अथवा नायक (आशिक) तथा प्रेयसी अथवा नायिका (माशूक) दोनों ही पुरुष हैं जबकि कश्मीरी गज़ल में प्रेमी पुरुष तथा प्रेयसी स्त्री होकर अपने हृदय स्थित भावों की मार्मिक अभिव्यञ्जना करते हैं। सौन्दर्य मेल की दृष्टि से देखा जाये तो कश्मीरी कविता में दो उत्कृष्ट कवियित्रियों ने सामयिक घटनाओं पर आधारित दो कविताओं की नींव डाली। ये दोनों ही विधायें स्वयं में ही एक प्रारम्भ भी हैं और एक अन्त भी क्योंकि इन का स्वरूप व आकृति अभी भी अप्रामाणिक हैं। चूंकि प्रस्तुत निबन्ध का विषय "गजल की व्याख्या करना है" अतः यहां काव्य की सम्पूर्ण विधाओं का विवरण प्रस्तुत करवा अभीष्ट नहीं है। हां! इतना कहा जा सकता है कि बचुन की लोक रिवायत ही है जिसने इसे गजल के रूप में स्वीकृति दी अन्यथा किसी वस्तु का इतनी शीध्रता से प्रेम का भाजन बनना अथवा लोकप्रिय होना सम्भव नहीं होता है। रहा प्रश्न स्त्री का आशिक तथा पुरुष का माशूक के रूप में व्यवहृत होना—इस विषय में दो बातें ध्यातव्य हैं। पहली बात यह है कि यहाँ स्त्री प्रायः पुरुष के पराधीन रही है। दूसरी बात यह है कि शिव और शक्ति की एकात्मकता हिन्दू धर्म की मौलिक धारणा (एकाग्रता) है जिससे हमारी अशिष्टता बच नहीं सकती थी क्यों कि सामूहिक अशिष्टता से बाहर अपनी स्थिति स्थापित करना असम्भव है।

यही वह सच्चाई है जिस के फलस्वरूप हमारे अधिकत्तम उत्कृट व मान्य कवियों का उत्कर्ष विद्यमान है। हब्बा खातून एवं अरिज़िमाल, ये दोनों ही

कवयत्रियां प्रेम की अग्नि से विदग्ध होकर विरहमय गीतों को सुर में बांधती हैं। इन गीतों की मान्यता के कारण ये जनता की अभिरुचियों से इतनी मिल गई हैं कि उन्हें पृथक् करना असम्भव है। अस्तु, महमूद गामी से पूर्व यहां वचुन की लोक प्रथा थी जो उन्हीं के माध्यम से उत्कर्ष को प्राप्त हुआ और फलत: गज़ल का जन्म हुआ।

हब्बा खातून के उपरान्त लगभग दो शताब्दियों तक अनुपयुक्त राजनैतिक परिस्थितियों के कारण कश्मीरी कविता का सुर समाप्त प्राय सा प्रतीत होता है। यह पूर्णरूपेण उसी अवस्था में पड़ी रही जिस अवस्था में यह यूसुफ शाह चक के समय में थी। महमूद गामी का जन्म सन् १७६५ ई० में हुआ। महमूद गामी सिक्खों व डुग्गर राज्यकाल से पूर्णरूपेण परिचित हैं। उन्हें उस परिस्थिति का सामना करना पड़ा जबकि कश्मीरी भाषा का अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना प्रमुख कार्य था। इस प्रकार महमूद गामी का कश्मीरी के प्रति रुचि लेना कश्मीरी कविता के नये युग का प्रारम्भ होने में लाभप्रद सिद्ध हुआ। महमूद गामी को अरबी व फारसी भाषाओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त था अथवा यों कहें कि इन दोनों ही भाषाओं पर उन को नियन्त्रण प्राप्त था। इसी के परिणाम स्वरूप उन्होंने कश्मीरी भाषा में श्रृंगारपरक पद्यों के समुच्चय को अलंकृत कर गज़ल रूपी वाद्य का वादन किया। प्रत्येक वस्तु को नये सिरे से जोड़ना था। उनकी निम्नांकित उक्ति उनकी कला की परिपक्वता का परिचय देती है—

शार वनुन मोअखतअ चोअम्बुन ज़ानतन।
या दिल व जान छु करुन बेरोंज़तन

अर्थात् कविता के लिये पद्यांश की रचना करना मोती में छेद करने के समान है। इसके लिये दिल और जान से बलिदान होने की आवश्यकता है।

महमूद गामी ने कश्मीरी के अतिरिक्त फारसी भाषा में भी कवितताएं लिखी हैं। ये बिना किसी उलझाव के प्रेके दृढ़ भावों को शब्दों में बांधते हैं—

यितअमो बालअयारो हाल वावय दितअमो बालिदर्शुन कअलिरावय।
वयन ज़न बालि म्थे छुम तालिप्यठ नाग मदअनो चालि ओअश कोताय
व त्रावय

अर्थात् विरह से सन्तप्त नायक से लौट आने का अनुरोध करती हुई नायिका कहती है कि अब तो आकर मुझे दर्शन दो ताकि में अपने हृदयस्थित भावों को कह सकूं। तुम्हारे वियोग में मेरे नेत्रों से इस कदर अश्रु धाराएं बह रही हैं मानो सिर पर चश्मा हो। हे प्रियतम। मुझे अभी कब तक आँसू बहाने हैं?

प्रस्तुत कवि यौवन रूपी उद्यान के विकसित पुष्पों की सुरभि का आनन्द लेने के लिये इस प्रकार नायक को उद्यत करता है—

खोअशी कर महमूदो अज़ वलो मो रोश
चअय सअत्यन लोलअ बागस पोश छावअ

अर्थात् महमूद (अथवा नायक)! कुपित न हो॥ प्रसन्न होओ॥। मैं (नायिका) तुम्हारे संग-संग इस यौवन रूपी उद्यान के पुष्पों की महक को अनुभव करूंगी।

विरह की अग्नि से विदग्ध नायिका इस प्रकार अपने प्रियजन के पीछे भागती हुई अपने वेदना को प्रकट करती हुई कहती है—

गोम कोत माशूक नीरिथ प्योम अज़ सु याद तय।
खतअदल तस पतअ प्रायस असतअ लायस नाद तय॥

अर्थात् मेरा प्रियतम न जाने कहां चल दिया, आज उस की याद मुझे वहुत कष्ट दे रही है। उस प्रियतम के कारण मुझे लोगों से क्या-क्या सुनना पड़ा और मैं क्या-क्या सहन करती गई।

विरह से पीड़ित प्रेयसी अपने प्रियतम के लौट आने की आशा से उसकी राहों को देखती हुई दिन और रात का भी अन्तर नहीं जान पाती—

रात द्रोह गोम ज़ागय ह्यवान मअन्ज़राग चन्दरय तारय

अर्थात् आप की राहों को देखते हुये मेरे रात दिन आकाश में तारों को गिनते व्यतीत हुए।

संसार अनश्वर है, ऐसा नहीं है, यहां जिसने भी जन्म लिया अथवा जो भी जन्म लेता है उसे एक दिन यह संसार छोड़कर वापिस जाना है। अतः इस पर महमूद गामी का कहना है कि हे मानव। चूंकि एक दिन तुझे यह संसार छोड़ देना ही है अतः आतिथ्य के इन चन्द लम्हों में इस संसार रूपी वाटिका के पुष्पों के रस का आस्वादन ले लो,

मत्यो लग्रजिम पोशन फुलय सारी तोशनद्राय ।
गोशन चेग्रय गोयनो हाबुल बुलो गोशन रग्रटिथ जाया ।
महमूद गग्रमी कथ धुख खिन तापस छिपताय छाय ।
अग्रखर मरग्रद ग्रफसूस ख्योग्रन क्यासना कथ किति ज़ाय ॥

अर्थात् बागों में फूलों की बहार छाई हुई है और सभी प्रसन्नचित होकर उनका आनन्द ले रहे हैं। लेकिन हे बुलबुल क्या तुम्हारे कानों में अभी तक मेरी अ वाज़ नही पड़ी। महमूद गामी कहता है कि तुम इतना शोच क्यों करते हो जहां धूप होती है वहां ही छांव भी होती है ।

यह बात भी वर्णनीय है कि यद्यपि महमूद गामी फारसी कविता से प्रभावित होकर ही गज़ल की रचना करते हैं तथापि वे लोक रुचि को ध्यान में रखते हुए अपनी रचनाओं में लोक इच्छा की व्याख्या करते हैं। महमूद गामी इस बात से पूर्ण रूपेण अवगत हैं कि लोकरुचियों से दूर भागने का परिणाम होगा लोगों से दूर भागना। इसी कलात्मकता ने महमूद को लोक प्रिय बनाया। महमूद गामी सन् १८५५ ई० में परलोक सिधारे। उस स मय उनकी आयु ९० वर्ष की थी। महमूद गामी के समकालीन कवियों में रसूलमीर के अतिरिक्त और कोई भी कवि आगे नहीं बढ़ सका। वली अलसद मतू, शाह गफूर, अब्दुल अहद नाज़िम आदि कवि महमूद गामी के दल में सम्मिलित होकर कश्मीरी भाषा को समृद्ध करते रहे हैं। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि इन कवियों की अपनी सत्ता अथवा महत्व नहीं था। था तो अवश्य लेकिन वह समय की आवाज़ व वेगवान रीतियों के अधीन रही।

रसूल मीर एवं अब्दुल अहद नाजिम की कविताओं का रसास्वादन किस सहृदय पाठक ने नहीं किया होगा। एक प्रसिद्ध फारसी काव्य पक्ति है—

मरादरदयस्त ग्रन्द दिल ग्रगर गोयम ज़बान सोज़द
व गब्ररदम कशम तर सम मग़ज़ ग्रस्तक ख्वान सोज़द

नाज़िम की कविता का यह पद्यांश फारसी कविता का कश्मीरी में अनूदित रूप प्रतीत नहीं होता है अपितु, एक कलात्मक अनुभव है जिस में न जाने कौन सा जादू भरा है।

ज़ोनुम नग्र वग्रनिथ हाल पज़ुन नारग्र दग्रज़ग्रमवस
वनहा तु दज्यम ताल वलव नालग्र मरग्रयो ॥

अर्थात् विरह की अग्नि से मेरा शरीर भी जल उठा मैं अपना हाल किसी को न कह सका। हे दिलबर। अब तो आजाओ नहीं तो मैं मर जाऊंगा।

प्रस्तुत काव्य पंक्ति हर दृष्टि से उत्तम है। इसका कल्पना वैभव व सौन्दर्य की छटा पाठक को बलात् अपनी ओर आकर्षित करती है।

अपनी मृत्यु की भी उपेक्षा कर अपने हृदय स्थित भावों से अपने निष्ठुर प्रेमी को अवगत करना उसकी प्रवृत्ति (कर्म भोग) है। उसका निष्ठुर प्रेमी उसे सुने अथवा न सुने उसे अपने प्रेम को निभाना है।—

यिम ज़ार वनस बरदारसु यार करसनाबोज़े।

या मारि तुलिथ खन्जर न तअ सानि शबाह रोज़े॥

अर्थात् मैं अपनी अवस्था को अपने निष्ठुर प्रेमी पर प्रकट करती, न जाने वह कब आयेगा! मेरा वह निष्ठुर प्रेमी या स्वयं मेरी हत्या कर दे अन्यथा मेरे पास कम से कम एक रात तो रहे।

रसूल मीर ने महमूद गामी के द्वारा प्रारम्भ की हुई काव्य की इस विधा (गजल) को काफी सीमा तक आगे बढ़ाया। रसूलमीर महमूद गामी के पश्चात् सन् १८७० ई० में स्वर्गवासी हुये। कश्मीरी गज़ल को उत्कर्ष प्रदान करने एवं इस में गज़ल के विविध लक्षणों का सृजन करने का श्रेय रसूलमीर को ही जाता है। इनकी गज़लों में गज़ल के लिए विहित समस्त विशेषताओं का समावेश है। उदाहरणार्थ संगीतात्मकता, सम्पन्नता आदि जैसी विशेषताएं उनकी गज़लों की प्राण हैं।

प्यार करने वालों का कोई धर्म या मजहब नहीं होता है इस विषय में दो धारणाएं नहीं हो सकती हैं। रसूल मीर स्वयं स्त्री का वेश धारण कर निडर होकर अपने धर्म को उद्घोषित करके अपने प्रियजन के चन्द्रमुख एवं घटा के समान जुल्फों पर अपना जीवन न्योछावर करता है;

रसूल छ्ज़ानिथ दीन तअ मजहब रोअखतअ ज़ुलफ़ चाअनि
कव ज़ानि क्या गव कुफुर तअ इसलाम निगारो

अर्थात् रसूल मीर अपने प्रियजन के धर्म व सौन्दर्य के उत्कर्ष ज़ुल्फों आदि से पूर्ण रूपेण परिचित है। जिसका कोई धर्म नहीं है वह धर्म और इस्लाम को क्या जाने।

मीरशाह आबाद का काव्य कौशल भी बेजोड़ है । उनकी निम्नलिखित काव्य पंक्तियां पढ़ कर उनकी यौवन रूपी केसर लता आंखों के सामने आती है;

गुमअ शबनम गुलरोअखस प्यठ ज़न छि अरकुदान तस
ज़ूनि प्यठ तारख पकान कारि वोअगुन दूरअ दानअ
कद चोन वुछिथ दीर अमान तीर गछान खम
या छु शमशेरि ज़राब या कमान या छि बुमय
या हलाल या छ महराव चाव मेअ जामि जमय
वुछ आफतावय चोन चअन दरअ मोअख तअडोअलुस रंग
गअज काचअ तवय ज़ून छुस सरसाम जिगारो
कद चोन अलिफ लाम ज़ुलुफ़ मीम दहन चोन
पोअर अकलि सबक शक लि अलिफ लाम निगारो ।।

प्रस्तुत पंक्तियों में नायिका का नखशिख वर्णन किया गया है। यथा कमल के समान मुख पर पसीने की बूंदें ओस के समान प्रतीत हो रही हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा हैं मानो चन्द्रमा पर सितारे चल रहे हों। तुम्हारा कद देख कर काम देव (धीर) भी मोहित हो जाता है और उस के तीर व्यर्थ जा रहे हैं। तुम्हारी भौहें कमान के समान हैं। यह 'हलाल' हो या 'महराब' मुझे इस जाम को पीने का अवसर दो। जब सूर्य ने तुम्हारे चन्द्रमा के समान मुख को देखा तो उसका रंग फीका पड़ गया । तुम्हें देख कर तो चांद भी शर्मा गया।

ये उदाहरण गज़ल की पंक्तियों तक ही सीमित हैं क्योंकि वच़ुन व गीतों से उदाहरण लेने का अर्थ होता विषय का विस्तार पा जाना। अतः इस अतिव्याप्ति दोष से बचने के लिए प्रस्तुत कवि की रचनाओं से केवल गज़ल के उदाहरणों को लिया गया। इस रोमानी कवि ने इतनी उत्कृष्ट कविता का सृजन किया कि महजूर जैसे कवि को भी एक शती के पश्चात् उसे स्वीकार करना पड़ा,

अथ दरदअ सूरअच परदअ तुलिय गवसु रोसुल मीर ।
महजूर लअगिथ आब बेयि दुबारय अति रोज़

अर्थात् इस दर्दनाक सूरत का पर्दा हटा कर उसे नग्नावस्था में छोड़कर रसूल

मीर इस दुनिया से चल दिया। उसी के उद्धार के लिये वह महजूर बन कर दुबारा इस लोक में आया।

वह इस सच्चाई से भी सहमत था कि स्वयं कुछ करके दिखाना उत्कृष्ट कवि होने का प्रमाण होता है—

महजूर दर से शमरो सरवन
गुलगों सपन गुल चेन मु बन
अदग्र छ़ख च़ग्र वल वाह् वारिगुल
करु बुलबुलो दीदारिगुल

महजूर पहले कश्मीरी हैं जिन्होंने कश्मीर निवासियों को आज़ादी रूपी उषा की नई किरण दिखाकर उन को आह्लादित किया

गटग्र च़ग्रज गाह ग्रोव लालन,
संगरमालन प्यव प्रागाश।
बागकि रेन्ज़ल बारिल्यन गालन
बुल बुलग्र गम ग्राव कड पखन वाश
येति योर चोनुय मज़हब पालन
संगरमालन प्यव प्रागाश
गुलि आखताबन मोहरग्रवरि थालन
लोल कि असमानग्र ह्यथ आवराश
इसबन्द ज़ोलुन अभि गुलालन
संगरमालन प्यव प्रागाश॥

अर्थात पराधीनता रूपी रात का अन्धकार समाप्त हुआ और स्वतन्त्रता रूपी सूर्य चमक उठा और चारों दिशायें प्रकाशमान हो गईं। संगरमाल (एक पुष्प का नाम) ने उषा की किरणों की चुनरी ओढ़ली। वाटिकाओं के पुष्प विकसित होकर खिल गये। अतः ऐ बुलबुल। अब तू स्वतन्त्र होकर वाटिकाओं में उड़ान भर ले। आज से तुम्हारे नियमों व रीतियों का पालन होगा। सूर्यमुखी फूल खिल कर प्रेम रूपी आकाश से खुशियां ले के आया। इसी प्रकार गुलाल के फूलों ने अपनी महक से चारों दिशाओं को सुरभित कर दिया।

यह हमारी राजनैतिक जागृति का सुखद समाचार देने वाली नई आवाज़ थी जो तत्कालीन आन्दोलन से प्रभावित होकर उद्भूत हुई तथा जिसके

फलस्वरूप कश्मीरी कविता की प्रकृति भी परिवर्तित हुई। महजूर की कविताओं के प्रकाश में आने तक कश्मीरी कविता की काव्य सामग्री में शृंगार परक एवं वीर रस परक गीतों का अतिशय मात्रा में प्रचलन हुआ था। 'गुलरेज़' नामक कविता ने कवि मकबूल कालवारी एवं 'सामनाम' नामक कविता ने कवि बुलबुल नाक़ामी को अत्यन्त उत्कर्ष प्रदान किया था। कश्मीरी कवि फ़िरदौस बहाव परे ने भी 'शाहनामा' को कश्मीरी में रूपांतरित कर दिया था। कवि महजूर कश्मीरी कविता के दोराहे के उस मोड़ पर स्थित हैं जहां से एक पथ सूफी कविता से गुंजायमान है तथा दूसरे पथ पर जीवन की जद्दोजहद कशमकश में स्वतन्त्रता एवं चेतावनी पुकार रही है। महजूर न ही सूफी कवि है और न ही उनकी गणना राजनैतिक अथवा क्रांतिकारी कवियों में की जा सकती है। उनकी उक्ति है—

महजूर न छुक जिन्द न मदहोश न साक़ी।
कथअ चानि बूजिथ आलमाह देवानुगव॥

अर्थात् महजूर! तुम न तो भूत (शैतान) हो, न मदहोश और न साक़ी ही हो लेकिन तुम्हारी बातों को सुनकर ही यह दुनियां मोहित हो गई।

महजूर ने नवीन विचारों का चिंतन करके गज़ल की प्रकृति में सार्थक वृद्धि की। महजूर की सौन्दर्य प्रियता उनकी कविता में प्रस्फुटित हुई है। इस प्रकार इन नवीन संकेतों की छांव में नवीन परिवर्तन एवं सुर ताल आदि भी उद्भुत हुए—

हा गुलो तोह्य मा वुछवोन यारम्योन
बुलबुलो तोह्य छु अरितोन दिल दारम्योन
चलअ लारि वुछमख हाल वन हअय वारअ वुछहअय रोअय
गलिज्यव म्यअ गअयम ओअश बोथुम ददरायि वनय क्या
लवअ हअच तअ छन्दरेमअच मसवल वनान वावस
दामान म्योन येअमि छोअल तस राह करार आस्या
वोथ शोर यामथ वाव हुसुन मोज तुलिथगव
इजहार ती कोर जुलफ़चि थथरायि वनयक्या

अर्थात् नायिका बागों में फूलों से पूछती कि उन्होंने उसके प्रेमी को वहां से जाते हुए देखा? वह बुलबुल से अनुरोध करती है कि वह उसके प्रियतम को ढूंढ लाए। नायिका अपने बीते क्षणों को, जब उसका प्रियतम उसे छोड़ कर गया था, याद

करते हुए कहती है कि जाने के लिए तुम्हें उत्सुक देखकर मैं तुम्हें अपना हाल भी न सुना सकी और न तुम्हें अच्छी तरह देख पाई थी। तुम्हें जाते देखकर मेरी वागेन्द्रिय ने जैसे बोलने से मना कर दिया और नेत्रों से अश्रु धाराएं बहने लगीं। इस प्रकार विरह से सन्तप्त नायिका, विरह के कारण जिसके मुख की छवि पाण्डुवर्ण हो गई थी, वायु से पूछती है जो मेरा प्रियतम मुझे छोड़ कर यहां से चला गया क्या वह सकुशल तो है ?

महजूर ने भी अपनी कविता में प्राचीन पारस्परिक मेल मिलाप व धार्मिक समानता को सुरक्षित रखा। वे सौन्दर्य के सच्चे पुजारी थे। यहाँ तक कि अपने देश की प्राकृतिक छटा उसके रोम-रोम में भरी पड़ी है। इनकी कविता में वक्रता एवं पेचीदगी नहीं है। उन्होंने अपने एवं सामाजिक वातावरण के बीच स्पष्ट भाषा में सम्बन्ध स्थापित करके उत्कर्ष को प्राप्त किया।

उत्कर्षता में महजूर के समतुल्य कवि आज़ाद का नाम कश्मीरी काव्य की भूमिका में आता है। उनकी कविताओं में महजूर के अतिरिक्त अन्य कवियों का प्रभाव भी स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है—

तुल म्यानि पानन सारि समयुक बोर कलस प्यठ
मलकन तु फलकन लरज़ु वोथ डीशिथतु जिगर म्योन
छ्यय ज़िन्दु रोज़ुन जुवस गिन्दुनाह कर
सबक़ ज़िन्दगी हुन्द चश्र पर नवजवानो
युस दरदु न्यस तानन मरदानु क़दम ओब
अहरेज़ु, नेज़ु, खण्जर ज़न पोशि फुलयछावे
बरताव दिलेश्न हुन्द क्याह ज़ानि सु बेचारअ
यस आयि लगान आसन ह्‌यथ आसि खेसिथ खावे
बतनुक सोज़ म्युठ लोग आज़ादस आविन सारी हावस
बागुच़ मसवस खासि ह्‌यथ आरान असिकुन वेयि यियिनाए ॥

अर्थात् इस समस्त लोक का उत्तरदायित्व मैंने शिरोधार्य कर लिया। मेरे धैर्य को देखकर यह धरती और गगन भी कांप उठे। ओ मेरे हृदय। अगर तुम अमर होने की कामना करते हो तो तुम अपने इस अनश्वर शरीर को दाव पर लगाने से क्यों कतराते हो। हे नवयुवक ! तू हमेशा अमर रहने के नियमों का पालन कर। जो विपत्तियों को हंसते हुए झेले उसे भीषण युद्ध में तलवारों, ढालों आदि से प्रताड़ित होने का क्या भय है। वीरों के व्यवहार को वह क्या जाने जिसने कभी

विपत्ति का सामना न किया हो।

इस प्रकार पुराने खण्डहरों (नियमों) को तोड़ कर नए पथ की रचना करने के लिए यह एक सुरदार किन्तु निस्सहाय आवश्यकता थी जिसने आज़ाद का रूप धारण करके ज़िन्दगी को भी गले लगाया था और गज़ल की विधा को विस्तार दिया था। आज़ाद के कथनानुसार पुरुष प्रकृति का सारभूत होने पर भी उसकी अपनी प्रेयसी के प्रति प्रेम की कल्पना केवल अपनी हृदयवल्लभ के सुडौल शरीर, सुन्दर मुखाकृति अथवा आकर्षक केशों तक ही सीमित नहीं रहती है अपितु यह इससे बढ़कर कुछ और भी है। आश्चर्य की बात यह है कि महजूर और आज़ाद के समकालीन होने पर भी इन दोनों कवियों की काव्यकल्पना अथवा काव्यशैली भी भिन्न है। यह ऐसा समय था जब प्रगतिशील धारणा साहित्य पर लागू हो रही थी अत: कश्मीरी साहित्य व काव्य इससे कैसे बच सकता था। आज़ाद इस धारणा के प्रस्तुतकर्ता हैं। उनकी गज़लों पर इकबाल का प्रभाव भी स्पष्ट है। उनकी कविताओं में भी गज़लों के लक्षणों की छाप प्रतीत होती है।

आज़ाद कश्मीरी काव्य की प्रकृति को खूब बढ़ावा देते हैं क्यों कि वे स्वयं भी इस बात से सहमत हैं कि प्रकृति ही प्रथम और उत्कृष्ट कला है खतीबाना कविता कोई उत्कृष्ट कविता नहीं मानी जा सकती है और ऐसी कविता की परख तत्कालीन सामाजिक व राजनैतिक परिस्थितियों को दृष्टि में रखकर की जा सकती है और तभी इसकी सुपरख सम्भव हो सकती है। इस प्रकार आजाद पहले आलोचक एवं साहित्यकार हैं। अपनी कला का सृजन करते समय भी उनकी आलोचनात्मकता भी साथ-साथ थी और यही कारण है जिसने उनकी कविता अथवा गज़लों को भावात्मकता अथवा कलात्मकता से रिक्त होने से बचाया। आज़ाद की कविता महजूर से निम्नतर कोटि की है, यह बात तभी प्रमाणित हो सकती है जब महजूर का 'कुलियात महजूर' प्रकाशित होने पर दोनों कवियों की निष्पक्ष तुलना की जाएगी।

कवि महजूर एवं आज़ाद के समकालीन युवा कवि मिर्ज़ा आरिफ़, अब्दुल सत्तार रन्जूर, पिताम्बर नाथ दरफ़ानी तथा श्री दरदेनज़ार आदि अपने अपने ढंग से आज़ाद द्वारा चलाई प्रथा को आगे बढ़ाते गए। आरिफ़ काफी उन्नति को प्राप्त होते गए। रन्जूर अपने भूतकाल की लालसा की अग्नि से दग्ध हुए जीवन को गंजल में अलंकृत करता रहा। जार तो अन्तिम समय तक भी प्रात: की भाँति को पुकारता रहा।

वक्रता से रहित होना तथा क्रमबद्धता का पालन फानी की गज़लों में शोभा की वृद्धि में सहायक सिद्ध हुए हैं। गुलाम अहमद फाज़िल बेमिसाल प्रकृति, अवक्रता एवं क्रमबद्धता के बावजूद भी उन्नति नहीं कर सके। वह अपने अनुभवों को वैसा कला सौष्ठव नहीं दे सके, जो काव्य को नित्य नवीन बना सकता है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् १९४७ से क्रांति रूपी वाद्ययन्त्र का स्वर ढीला पड़ने से कवि भी धीरे धीरे अपनी कविताओं में समाज एवं राजनीति का आदर्श वर्णन करने से परे होते गए। कवि अपने ही भीतर झांक कर देखने में व्यस्त हो गए इस प्रकार वे अब वस्तुनिष्ठता की अपेक्षा व्यक्तिनिष्ठता पर बल देने लगे। परिवर्तन जीवन का नियम है अतः आज के युग में परिवर्तनों से छुटकारा नहीं मिलता। कहने का अभिप्राय यह है कि कवियों का सम्पूर्ण कारवां गौरव रूपी द्वार से भीतर जाकर कल्पनाओं के शीशमहल को चकनाचूर कर मानो अब थक कर शिथिलावस्था में पड़ा है। यह जीवन पहले भी एक प्रश्न चिन्ह ही था और आज भी। यह धरती संकीर्णता को प्राप्त होती गई। मानव ने चांद पर भी उड़ान भरी एवं दिन प्रतिदिन उसकी चिन्ताओं में वृद्धि ही होती जा रही है, उस की मानसिक शांति भी समाप्त प्राय होती जा रही है। यह वह पूर्वकालिक प्रमाण है जिस पर आधुनिक गज़ल की परख के लिए दृष्टि डालना अनिवार्य है।

नवीन भावाभिव्यक्ति के लिए नवीन कांट-छांट, एवं नवीन उपमाओं तथा सादृश्यताओं की आवश्यकता है। रहमान राही भी कश्मीरी का उत्कृष्ट कवि है। 'नोरोज़ हवा' के कवि तथा आज के राही में धरती गगन का अन्तर है। राही की पुरानी गज़लें सामयिक रीतियों एवं परिस्थितियों की अनुगूंज होने पर भी एक नयापन लिए हुए हैं। उनकी नई गज़लों में यथार्थता की अपेक्षा कलात्मकता पर बल दिया गया है। इन गज़लों को पढ़ कर प्रतीत होता है कि इन के पद्यों को गढ़ लिया गया है, वे स्वयं ही निःसृत नहीं हैं। इसका कारण यह है कि नवीनता के भ्रम में पड़ कर विचारों को सोच-समझ कर ही वाणी में बांधा गया है।

गुलाम नबी फ़िराक़ की गज़लों में वक्रता एवं पेचीदगी नहीं है। रहा प्रश्न कि वे अभी तक एक स्वतन्त्र सुर व लय को क्यों जन्म न दे सके जिसे उनका काव्य कौशल कहा जा सकता था। इसके दो प्रमुख कारण हो सकते हैं। पहला, अभी तक उनकी कविताओं का कोई भी संकलन नहीं छपा है जिससे हमें इस

बात को प्रामाणित करने में सहायता मिल सकती। दूसरे, फिराक़ साहिब बार बार अपनी एक विशिष्ट शैली को बनाने की चेष्टा करते हुए भी उसे हाथ से खो देते हैं अर्थात् अभी वे अनुभव के कोमल तन्तुओं को अभिव्यक्ति के माध्यम से बुनने की चेष्टा कर रहे होंगे कि बीच में ही उनके मस्तिष्क में ऐसा भाव उत्पन्न होगा जो बिल्कुल रिक्त होगा।

अमीन क़ामिल अपनी प्रशंसा स्वयं ही करते हैं। मुहम्मद यूसुफ टेंग इस बात की ओर संकेत करते हुए कहते हैं, "कामिल एक प्रसिद्ध किन्तु भिन्न प्रकृति का कवि है, एक शुद्ध किन्तु मस्त आवाज़, एक नवीन रीति बन गई है। यह बात तो नितान्त शोचनीय है कि इस कवि को इस वास्तविकता का स्वयं ही इज़हार करना पड़ा। वे अपनी गजल की मौलिकता का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

मीर त महजूर गयि गामकोलन दामदिथ
चोव नव्यन सरहदन अ़ेश गज़ल कोमिलन

अर्थात् कवि रसूल मीर तथा महजूर तो गांव की नदियों का ही पान करके चले गए किन्तु कामिल ने अपनी गज़लों को नित नवीन सीमा प्रांतों के जल का पान कराया।

वास्तविकता तो यह है कि कामिल की यह आवाज़ अद्वितीय है। जिसने रिवायतों का सार निकाल कर नए समय के तौर तरीकों का अपने भीतर समावेश कर कश्मीरी गज़ल को उत्कृष्टता दी। उन की गज़लें वर्तमान युग का दर्पण हैं; वर्तमान प्रेमी के भाव, भौतिक प्रेम कि चिन्ताओं में फंस कर मरते हुए भी जीने की कामना करता हुआ वह तथा उसका प्रेम अमर है। उन्होंने कश्मीरी गजलों में हास्य रस के पुट को भी बढ़ावा दिया।

अमीन कामिल के अनुभवों में नवीनता तथा शुद्धता विद्यमान है। उनकी गज़लों में बेफिक्री अथवा मस्ती के साथ-साथ चिन्ता के भाव भी फूट पड़े हैं। एक पुरकार (चित्रकार) के समान अपने संकेतों व भावों की अभिव्यंजना करते हैं।

मुज़फर आजिम की गज़लों में न कोई वक्रता है, न तात्पर्यता और न ही एब्सर्डिटी का समावेश है। उसके प्रतिबन्ध वह उत्साही एवं व्यग्र होने पर भी प्रेम में मग्न है। उनके प्रतिबन्ध एवं शब्दों की कांट-छांट भिन्न ही है जो उसे अपने रोमानी काव्य प्रवृति के लिए प्राप्त हुई है।

गुनाम नबी ख्याल की कविता के पीछे यदि समाचार पत्रकारिता एवं

राजनीति न होती तो यह अतिशय उत्कर्ष को प्राप्त कर लेती। तथापि वे अवकाश के क्षणों में काव्य रूपी नायिका की गज़ल रूपी लटों को फूलों से अलंकृत करते रहते हैं।

सय्यद महीउद्दीन नवाज़ प्राचीन रीति के कवि हैं। वे हकीकत को प्रकाश में लाकर उसकी परख करना अपने जीवन का हक जानकर उसकी अभिव्यक्ति करते हैं। बीच बीच में वे सामान्य अनुभवों को भी शब्दों में पिरोते हैं। जबकि मरगूब बानिहाली निमित व कला के मध्य स्थित होकर नित्य नवीन उपायों का सृजन करते हैं; शब्दों का वे चुन-चुन कर प्रयोग करते हैं।

रशीद नाज़की की कविताओं में उनकी कल्पना की परिपक्वता तथा कलात्मक सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है तो मोती लाल साक़ी दिन प्रतिदिन काव्य के क्षेत्र में अत्यन्त उत्कर्ष को प्राप्त कर रहे हैं। जहां एक ओर उन्हें भूतकाल की चिन्ता कष्ट दे रही है तो वहीं दूसरी ओर वर्तमान की तन्हाई भी उन्हें अखरती है। कभी उन्हें किसी अज्ञात मन्ज़िल तक जाने की कामना है तो कभी वे रमनियों के घुंघराले केशों की छांव में रहना भी पसन्द करते हैं।

कवि हाजी मुनवर सादगी पूर्ण जीवन के विविध अनुभवों को गज़ल के रूप में परिनत करते हैं। उनकी गज़लें वक्रता एवं पेचीदगी से मुक्त हैं किन्तु उनकी गज़लें भावों से रिक्त भी नहीं हैं और न ही उनमें भावों का गहराई से वर्णन है। गुलाम नबी नाज़िर विभिन्न प्रकार से अपनी प्रेमानुभूति की अभिव्यञ्जना करते हैं। इन की कल्पना में कोई नूतनता नहीं हैं किन्तु ये नवीन और कोमल शब्दों का प्रयोग करते हैं और इसी से उनकी गजलों में ताज़गी भरी पड़ी है।

रसूल पोम्पुरी जीवन के विविध अनुभवों को गज़ल में अभिव्यक्त करता है तथा अपनी इच्छानुसार इस गज़ल रूपी चित्रफ़लक को गहरे व गाढ़े रंगों से भर देता है। पुरानी प्रथाओं को सुरक्षित रखना तथा नवीन को जन्म देना ही उसका लक्ष्य है।

इन के अतिरिक्त मशअल सुल्तानपुरी, संतोष, नाज़िर, गमगीन, मुहम्मद अयूब बेताब, गुलाम मुहम्मद शाद, मोती लाल नाज़, अब्दुल फनी नदीम, गुलाम नबी मौहर, क़ाज़ी गुलाम मुहम्मद अहस अहस, बशीर भद्रवाही; अब्दुल मजीद सायर, शाहिद बडगामी अब्दुल लरजमान आज़ाद, महीदीन शकेब अब्दुल लरजमान तालिब, रघुनाथ कस्तूर, मक्खन लाल कौल, गुलाम अहमद गाश,

अब्दुलफार मजबूर, राधे नाथ मसर्रत, मन्जूर हाशमी, निशात अन्सारी तथा अर्जुन देव मजबूर आदि कवि या तो नवीन पंक्तियों की रचना करते हैं अथवा कभी पुरानी रीति के आधार पर ही, अपनी रचनाओं की रचना करने में व्यस्त दिखाई देते हैं।

किसी भी नवीन प्रथा के स्थिर होने के साथ अकाव्यत्व एवं कलात्मकता से रहित तर्क भी जन्म लेता है। आधुनिक गज़ल के विशेष विषय हैं 'तन्हाई, सहरा व अन्धेरा (अज़िगड), कालिमा (क्रेहन्यार) पिपासा (त्रोश) अविश्वसनीय एवं आश्रयहीन मानव आदि बन गए हैं। अब इस बात को देखना है कि हमारे ये कवि. किस सीमा तक इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकते हैं तथा गज़ल में सदा बहार रंग भर सकते हैं क्योंकि भावों की अभिव्यंजना कदापि एक सी नहीं रहती है क्योंकि इस समस्त विश्व में पत्र-पत्र पर सार्थकता छाई हुई है। ●

# कश्मीरी रंगमंच और नाटक

—डा० रतन लाल शाँत

यह संयोग नहीं कि कश्मीरी में रंगमंच पहले स्थापित होकर लोकप्रिय हुआ और फिर मंच नाटक लेखन प्रेरित हुआ। नाट्य लेखन की क्लासिकल परम्परा जो संस्कृत नाटक तथा हिन्दू राजदरबारों के मनोरंजन-उत्सवों के संरक्षण से चल सकती थी, ठीक इन्हीं कारणों के अभाव से सूख गई थी। ग्यारहवीं सदी के महाराज हर्ष की दरबारी नर्तकियों के लिए शुद्र स्थानीय रंजन के नाट्यालेख कोई बहुत अनिवार्य भी नहीं थे, संस्कृत का भण्डार उनका सहायक होता रहा होगा, जो भारतीय परिप्रेक्ष्य में सोचे तथा लिखे जाते थे। क्षेमेन्द्र की कृतियों में नाटकीय तत्व जरूर हैं, पर उनकी नाटकीय सम्भावनाओं को कितना प्रयुक्त किया गया—इसका अभिलेख मौजूद नहीं। जैन उलाब्दीन के दरबार में कला को पुनः स्थापित करने की कोशिश की गई पर मंचन की सम्भावनाएं उस समय हो नहीं सकती थीं। कट्टरपन्थी सैयदों के साथ उसकी आरम्भिक टक्कर और बाद के समझौते से प्रदर्शनात्मक अनुष्ठानों की नियति का अन्दाज़ा करना कठिन नहीं। जनजीवन में, विशाल पैमाने पर सत्तालोलुप वर्ग की सतत संघर्ष प्रवणता की जो प्रतिक्रिया हुई वह कला के जनरूपों, लोकवार्ता में अभिव्यक्त हुई। लोकनाटक की प्रकृति मंचात्मक होती है पर रंगमंच केवल लोकनाटक पर आधृत रहने के कारण परिष्कार और स्थायित्व नहीं पाता। भारत में १९वीं शती में युरोपीय नाट्य-संस्कृति के प्रवेश से लोकनाटक की ग्रामप्रधान धारा के समान्तर नगर प्रधान नाटक मंडलियां चल पड़ीं और अंग्रेजी शासन की उपनगराविष्ट चिंतना ने परोक्ष रूप से इस 'मंडलीकरण' को बढ़ावा दिया। श्रीनगर में बीसवीं सदी में यही स्थिति थी। जो वर्ग किसी कारण से शेष भारत से ज्यादा सम्बद्ध था उसका स्वाभाविक संरक्षण ऐसी मंडलियों को यहां भी मिला। यही कारण है कि

तथाकथित पारसी या पारसी-जैसी मंडलियों को यहां के रहने वाले पंजाबी और डोगरा वर्ग ने बढ़ावा दिया और यही कारण है कि इन मंडलियों ने यहां उर्दू-हिन्दी के नाटक ही खेले। तत्कालीन नाटकों में काम करने वाले अभिनेताओं में स्व० वेदलाल धर, स्व० जगन्नाथ साक़ी, स्व० श्रीधरजू हखू, श्री सुदामा जी कौल, श्री प्रेमनाथ जत्तू, श्री माधवजू तिक्कू, श्री राधाकृष्ण सप्रू जैसे कश्मीरी भाषी भी थे, जिनके अनुभवों को समेट-संजो कर उस समय के रंगमंच पर शोध करना अभी बाकी है और इससे आधुनिक कश्मीरी रंगमंच की एक विश्वस्त पृष्ठभूमि खड़ी की जा सकती है।

## कश्मीरी नाटक का उद्भव

कश्मीरी का पहला उपलब्ध मंच नाटक (नन्द लाल कौल का—सतुच कहवट—सत्य की कसौटी) राजा हरिश्चन्द्र की सत्य परीक्षा के पौराणिक आख्यान को लेकर १९२९ ई० में लिखा तथा मंचित किया गया। नाटक के मंचन-प्रस्तुतीकरण से कश्मीरी पंडित वर्ग (तथाकथित) पारसी मंचकाल से ही जुड़ा रहने के कारण नाट्यलेखन का भी पुरस्कर्ता था। जो नाटक 'सतुच कहवट' के बाद भी लिखे गए उन पर इसकी इतनी गहरी छाप थी कि उनकी वस्तु तथा शिल्प दोनों स्वतन्त्र नहीं थे। तारा चन्द बिस्मिल का 'सतुच वथ' (सत्य-पथ) 'अकुनंदुन' (एक पुत्र 'अकुनंदुन') 'प्रेमुच कहवट' (प्रेम की कसौटी) 'राम अवतार' नीलकण्ठ शर्मा का 'बिल्व मंगल' जैसे नाटक हिन्दू आख्यानों पर और उसी के समांतर गुलामनबी दिलसोज़ के 'शोदु' (शोहदा) 'लैला मजनूं', 'शीरी खुसरो' फारसी-अरबी तथा अन्य इस्लामी आख्यानों पर आधारित थे। ये नाटक काफी लोकप्रिय हुए और एक ग्रामोफोन कम्पनी ने इन्हें रिकार्ड भी कर लिया। इन नाटकों के लिखे जाने की प्रेरणा रंगमंच की सहज प्राप्ति भी थी। श्रीनगर में हिन्दू समाज सुधार के दो केन्द्रों शीतलनाथ मन्दिर और शिवालय मन्दिर के साथ की धर्मशालाओं के बने बनाए मंच और शौकिया कलाकारों की एक पूरी पौध थी। इन पर आगे चलकर अन्य शैक्षणिक आख्यानों 'सत्यवान सावित्री', 'भक्त प्रहलाद' 'शंकर पार्वती', 'सुदामा', 'कृष्ण जन्म' जैसे नाटक हफ्तों तक खेले जाते रहे और १९४७-४८ तक बड़ी बड़ी भीड़ें आकृष्ट करते रहे।

कश्मीरी मंच नाटक के इस उद्भव काल में पौराणिक आख्यानों की प्रभाविता का कारण केवल लेखक वर्ग के स्वरूप में ही नहीं ढूंढा जा सकता बल्कि इसे उस समय की राजनैतिक स्थिति के परिप्रेक्ष्य में भी देख सकते हैं। यूं भी

कह सकते हैं कि इस विशिष्ट विकास को हिन्दी नाटक में जयशंकर प्रसाद के नाटकों के सामाजिक-राजनीतिक विश्लेषण के समानांतर देखा-समझा जा सकता है। प्रसाद समकालीन हताशा को ऐतिहासिक स्वर्णिम विस्तार के बीच स्थापित करके छोटा करके पेश करना चाहते थे और कश्मीरी नाटककार राजनीति के लोकप्रिय साम्प्रदायिक स्वरूप के समक्ष अपनी अलग पहचान बनाए रखना चाहते थे। यह अलग बात है कि भारतीय पुराण, कला और नाटक के सदा तैयार अक्षुण्ण कोष हैं और उन्हें आज भी समसामयिक अर्थ ढूंढने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। उस समय स्थिति भिन्न थी। कश्मीर में डोगरा शासन के हिन्दू रूप में यदि स्थानीय हिन्दू को कोई आश्वासन नज़र आता था तो वह लोकप्रिय अधिसंख्य राजनीति के सम्प्रदायीकरण के कारण फिसलती ज़मीन से ज्यादा कुछ नहीं था। १९३१ तक, जब मुस्लिम कान्फ्रेंस की सम्प्रदायगत भूमि बन रही थी, राजनीति भारत के धर्मनिरपेक्ष सन्दर्भ से जुड़ी नहीं थी। ऐसा होने के बाद अर्थात् नैशनल कान्फ्रेंस के निर्माण के बाद धीरे धीरे स्थानीय हिन्दू खुलकर राजनीति में आ गया। इसका सब से बड़ा प्रमाण १९४२ का 'कश्मीर छोड़ो आन्दोलन' है जिसके नेतृत्व का बड़ा भाग पण्डितों के हाथ में था। मगर अधिसंख्य पण्डित वर्ग स्वर्णिम देवकाल के स्वप्न से पीड़ित था। १९४२ का आन्दोलन भी स्वप्न जीवी पण्डित लड़कों के लिए मार्क्सी स्वर्ण-स्वप्नों को चरितार्थ करने का पथ था।

'सतुच कहवट' से एक अंश का स्वतन्त्र अनुवाद तथाकथित पारसी-शैली के नाटक की विशेषताएं रेखांकित कर सकेगा।

## चौथा पाथर (अंक), दूसरा स्वांग (दृश्य)

(श्मशान)। (तारा शव लेकर आती है और नीचे रख देती है।)

हरिश्चन्द्र : (तारा से) तुम अकेली खुद ही शव लेकर क्यों आई हो? तेरा नहीं कोई अपना है।

तारा : (रोते रोते) मेरे कर्म में यही बदा है।

हरिश्चन्द्र : यह तेरी सन्तान होगी? (आश्चर्य से दोनों को देखता है।)

तारा : हे चांडाल! क्यों देख रहे हो इसे इस कदर ध्यान से? मेरी एक अकेली यह सन्तान है। सांप ने लिए इसके देखो प्राण हैं।

हरिश्चन्द्र : डूबे जाएं इसे देखकर मेरे मन और प्राण हैं। (उसांस लेकर) अच्छा! भगवत् इच्छा! लाओ दो मुझे सोने की एक मुद्रा और मैं इसका दाहसंस्कार करूं।

तारा : मुझ पर करना दया प्रभु ! मैं परदेसिन हूं । पर कटी पंछिन हूं । सोने की मुद्रा के बगैर करोगे क्या नहीं दाहसंस्कार इसका ?

हरिश्चन्द्र : नहीं यह हो सकता । नहीं मुझे मिली है ऐसी आज्ञा ।

यह नाटक बहुत बार घाटी भर में खेला गया तो केवल पौराणिक होने के कारण नहीं बल्कि कलात्मक पूर्णता के कारण इस की मांग बढ़ती गई। पारसी शैली को दबाव को मानते हुए भी इसमें नाटककार ने नाटकीय और मानवीय भावानाओं का चित्रण कुशल शिल्पी की तरह किया है। इस तथा इस तरह के अन्य नाटकों के मंचन में यथार्थ को पुन: सृजित करने की हर संभव विधि अपनाई जाती थी। उस समय उपलब्ध तंत्र की सहायता से आकाश में उड़ना, नदी में चलना, स्तम्भ का बीच में से फूट जाना आदि दिखाया जाता था और इलेक्ट्रानिक सहायता के अभाव में पटाखे छुड़ाकर और रंग बिरंगे कागजों से मंच की रंगीन दुनियां को उभारा जाता था । तुकान्त संवादों के अलावा पात्र स्वतंत्र गीत भी गाते थे ।

मगर नागरिक या कहना चाहिए कि नगर केंद्रित नाटक के साथ साथ दो और धाराएं चलती थीं । एक थी सजे सजाए मंच से असंबद्ध मगर किताबी ज्ञान से प्रेरित कुछ लेखकों की । मुहीउद्दीन हाजिनी ने (१९३८) 'ग्रीस्य सुंद गरु' (किसान का घर) नाटक एक शुद्ध ग्रामीण अनुभव को लेकर लिखा । इसे कुछ गावों में खेला गया और समस्या के स्थानरंजन के कारण इसे पसन्द भी किया गया। भाषा स्थानीय मुहावरे पर आधारित थी पर समस्या के प्रति एप्रोच शास्त्रीय थी। हाजिनी का नाटक लिखने का अनुभव दोबारा कम दोहराया गया और इस अनुभव की प्रेरक शक्ति उन के भाषा और साहित्य के पुनरुत्थान की इच्छा थी। कश्मीरी भाषा और लिपि को सही स्थान दिलाने में इन का बड़ा हाथ रहा है और जब कश्मीरी में विशेष कर गद्य की ओर लेखकों की प्रवृत्ति नहीं के बराबर थी, तब उनका हर प्रयत्न इस भाषा को आंदोलित करने के प्रति लक्षित होता था।

दूसरी प्रवृत्ति लोक नाटक 'भाण्ड पाथुर' (या बांड पअथर) की अक्षुण्ण परम्परा की थी जिसके कथा सूत्र और अभिनय-विधि विषय राजनीतिक वातावरण में और ज्यादा समृद्ध हुई। कारण यह था कि यह नाटक विषमता के विरोधों से ही जीवन ग्रहण करता रहा। जनसामान्य की नाराज़गी प्रकट

करने और हंस कर विरोध जाहिर करने का यह सर्वसुलभ साधन था। लोक-वार्ता के अन्य अंगों जैसे लोक कविता और लोक कथा से भिन्न होने के कारण यह सामूहिक प्रतिरोध का बेहतर वाहन था क्योंकि नाटक प्रकृति से ही सामुदायिक होता है। मगर यह कश्मीरी संस्कृति की विडंबना थी कि इस सैंकड़ों वर्ष पुरानी परम्परा से न उस समय के लेखक ने और न ही मंचकर्मी ने लाभ उठाया। इस बिडंबना का कारण शायद संस्कृति की, जातीय संस्कृति की चेतना का अभाव ही है।

## जन साधारण और आधुनिक कश्मीरी मंच

जातीय चेतना को उभारने के लिए एक झटके की जरूरत थी। हिन्दी और अहिन्दी पर अकश्मीरी भारतीय सहित्य में प्रगतिशीलता के अभ्युदय से मंचकर्म भी प्रभावित हुआ था और भारतीय लोक नाट्य संगठन अथवा इप्टा की स्थापना ने देश की करीब करीब हर भाषिक इकाई और जातीय केन्द्र को झकझोरा था। कश्मीर में भी इप्टा की स्थापना की कोशिश हुई। स्व० बलराज साहनी ने पितृभूमि को इप्टा के भारतीय मानचित्र में लाने की कोशिश की। पर कोशिश सफल नहीं हुई हालांकि प्रेमनाथ परदेसी, महजूर और आजाद जैसे आजाद खयाल लोगों से सम्पर्क बढ़ा और प्रो० पुष्प आदि के सद्प्रयत्नों से 'सोवियत संघ के मित्र' नामक संस्था या विचार गोष्ठी ने जन्म लिया। ऐसे प्रयत्न बहरहाल बौद्धिक स्तर तक ही सीमित थे पर १९४७ में आजादी और कश्मीर के भारत से जुड़ जाने के बाद कबाइली आक्रमण हुआ प्रगतिशील तत्व कार्य-शील हुए और जनसाधारण में प्रतिरोध की चेतना जगाने के लिए मंच ने बड़ी भूमिका अदा की। जनप्रशासन की स्थापना और सत्ताधारी दल की प्रगतिशील घोषणाओं से विश्वस्त वातावरण में कल्चरल फ्रंट की स्थापना कश्मीरी साहित्य और मंच के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस मोर्चे के तत्वावधान में परदेसी के छोटे बड़े नाटकों जैसे 'डालरसाब' तथा '3/4' साम्राज्यवादियों के प्रत्यक्ष और परोक्ष हस्तक्षेप तथा जागीरदारी-जमीनदारी व्यवस्था के वर्गसापेक्ष जुल्मों को निहायत ही अप्रच्छन्नरूप में और कलात्मक बाजीगरी के बगैर जगह जगह पेश किया गया। इससे सही तौर पर मंच नाटक और वस्तुत: आधुनिक कश्मीरी मंच नाटक की सम्भावनाओं का अन्दाजा हुआ। इसी तर्ज पर फिर १९५० में एक भयानक बाढ़ आने के वक्त अली मुहम्मद लोन

का 'विज़ छि सान्य' (वेला हमारी है) और पुष्कर भान का 'यातन या तड़ाख' जैसे नाटक खेलकर लोगों में आत्मरक्षा के लिए मनोबल जुटाने की भी कोशिशें हुईं और हास्य व्यंग्य द्वारा पीड़ा कम कराने की चेष्टा भी। इन नाटकों की साहित्यिक कद्रोकीमत क्या थी—इस प्रश्न में न जाकर यहां यह कहना जरूरी है कि इन से उस रंगमंच के लिए मानवीय तथा आनुनिक सामग्री जुट गई जो १९५६ में जश्ने-कश्मीर के दौरान बहुत काम आई। १९५८ में कल्चरल अकादमी की स्थापना और इस संस्था के द्वारा फिर मंच को संरक्षण देने के लिए जो कार्य हुए वे स्तुत्य हैं।

कश्मीरी मंच की स्थापना, इसे जीवन दान देने तथा इसे परिनिष्ठित करने में दीनानाथ नादिम के गीत-नाटकों का बड़ा हाथ रहा है। 'बोंबुर त यंबरज़ल' (भ्रमर और नरगिस) 'नेकी त बदी' (नेकी और बदी) 'हीमाल नागयराय' तथा 'व्यथ' (अथवा 'वितस्ता') जैसे गीत-नाटकों ने मंच की साफिस्टिकेटेड ऊंचाइयों को खोज निकालने की जबर्दस्त प्रेरणा दी। इन में, वस्तु की दृष्टि से, या तो लोक कथाओं या इतिहास कथाओं का आधार लिया गया और कश्मीर की जातीय संस्कृति को विश्व बंधुत्व तथा आधारभूत मानव-अनुभूतियों को उजागर करने की गर्ज से गीत रंजित किया गया। पुष्कर भान, मोहन लाल ऐमा, प्राण किशोर जैसे सिद्ध हस्त मंच शिल्पियों ने इन गीतों को नाटकीयता से दोलायित किया और कई गणमान्य अभिनेताओं ने इन्हें संगीत की लय पर खेला। नादिम जैसे भाषा की व्यंजना को उभारने वाले कवि ने इन में भावनाओं की कोमलता और कोमलता की विविधरंगी अर्थ छायाएं उभारीं। काल्पनिक समृद्धि और यथार्थ समस्याओं के अर्थपूर्ण इशारों से ये गीत-नाट्य मालामाल हैं। मंच के परिष्कारण के लिए इनका अलग महत्व है। भारतीय शास्त्रीय संगीत, कश्मीरी सूफियाना संगीत और लोक गीत तथा नाटक की तमाम परम्पराओं को इनमें जीवित पाया जा सकता है। मंचकार के लिए अभिनेता की शरीर मुद्राओं में शास्त्रीय या कहें कि नियमपुष्ट परिसंस्कार लाना तथा फिर उस की सहज मुक्त गति में समन्वय स्थापित करना एक विशिष्ट अनुभव रहा होगा। यदि ऐसे अनुभव लिपिबद्ध किए जाते तो मंचन की विकासशील परम्परा को आगे बढ़ाने में बड़ी सहायता मिलती। 'नादिम' का नाट्य लेखन प्रगतिशील मानव मूल्यों की पुनर्स्थापना को समर्पित है इसके लिए क्या केवल जन नाट्यानुभव और मर्यादाओं से ही लाभान्वित होना और नाटक करना सही था या कि शास्त्रीय

परम्परा पुष्ट सरणियों से गुजर कर प्रस्तुति को मुकम्मल बनाना—यह बहस का विषय है और इसमें सम्बद्ध रंगकर्मी हिस्सा ले सकते हैं। जो भी हो कश्मीरी मंच नाटक के इतिहास के विकास की दागबेल उन्हीं के नाटकों (जैसे 'बोंबुर त यंबरजल') से पड़ती है और इस नाटक की विकसित स्थिति का एक महत्वपूर्ण चरण भी नादिम का ही एक गीत नाट्य (वितस्ता) है।

यह संयोग नहीं कि 'भांड पथ्रथर' को आधुनिक परिवेश की अभिव्यंजना के लिए सबसे पहले राधाकृष्ण आरू ने इस्तेमाल किया। आरू पांचवें दशक से ही कश्मीर में होने वाले धर्मनिरपेक्ष नाटकों के प्रति, व्यक्तिगत कठिनाइयों और सामाजिक भत्सर्ना के बावजूद जिस तरह समर्पित रहे, वैसी मिसालें कम ही रंगकर्मियों की मिलती हैं। उनके प्राइवेट अनुभव और संस्मरण (यदि वे लिखते तो) आधुनिक कश्मीरी मंच की पृष्ठभूमि समझने में मददगार होते। १९६३ में उन्होंने 'याहू' नामक नाटक लिखा और उसे खुद ही प्रस्तुत भी किया जो इस 'पथ्रथर' की 'राज पथ्रथर' (राजा-नाटक) किस्म पर आधारित था। मुख्य कथा-अवदान (अभिप्राय-मॉटिफ) तथा वार्तालाप की प्रकृति 'भांड' जैसी थी, पर प्रासंगिकता के खयाल से वस्तु समकालीन महत्व की थी। प्रस्तुतीकरण में पात्रों की चेष्टा, परिभ्रमण, ऊहात्मक अदाकारी तथा साज सज्जा सब 'भांडमय' थी मगर प्रस्तोता ने प्रोसीनियम के चौखटे की हदें तोड़ने की पहल नहीं की और मंच की गहराई को कृत्रिम निर्माण से युक्त करने को भी उपयुक्त नहीं समझा। राजा और वजीरों के लिए ऊंची सतह की परिकल्पना को उन्होंने ईमानदारी से कार्यान्वित किया, यद्यपि इससे लोकनाटक की मूलभूत सहजता और सर्वपात्र समता में व्याघात पैदा हुआ। लोकनाटक में जो विद्रूप का तत्व होता है और जिसकी रक्षा एक ही सतह पर पात्रों को खिलाने से सरल हो जाती है। उसमें इससे थोड़ी बाधा पैदा हुई। पर आरू का धैर्य तथा कल्पनाशीलता श्लाघ्य हैं कि उन्होंने इस तबतक के 'गर्हित' नाट्यव्यापार को 'टैगोर हाल' के परिनिष्ठित मंच पर चढ़ाया और सुसभ्य नाटक प्रेमियों को अपनी शक्तियों से परिचित कराया। उनकी उस प्रस्तुति में अगर हमें अभाव नजर आते हैं तो आज के मुकाबले में, जबकि लोकवार्ता पुन:जीवित हो गई है और इसे काफी प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। आरू ने इसे तब प्रतिष्ठित किया, ईमानदारी और समर्पण के साथ। समर्पण इस मंचकर्मी की हर प्रस्तुति का मूलमंत्र रहा है। ऐसी समर्पण भावना किसी भी भाषा के रंगकर्मी के लिए ईर्ष्या का विषय हो सकती है।

कश्मीरी मंच पर अपनी दर्जनों प्रस्तुतियों में उनकी एक और अहल उल्लेख्य है—पहले एब्सर्ड नाटक (आइनेस्को के 'पाठ') का मंचन। यह उर्दू में हुआ।

मगर कश्मीरी मंच नाटक को स्थाई लोकनित (Folk-tilt) देने का श्रेय मोती लाल क्यमू को है। शास्त्रीय नृत्य से शुरू करके और नाटक-प्रस्तुति में बड़ौदा से उपाधि प्राप्त करके उन्होंने कलाकार के नाते अपना जीवन हिन्दी में नाट्यलेखन से शुरू किया। उनकी आरम्भिक प्रस्तुतियों में रवीन्द्र का 'डाकघर' और चन्द्रवदन मेहता का 'काज़ी जी' उल्लेखनीय हैं। उन्होंने तीन असंगत एकांकियों की रचना की जो बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित भी हुए—'नंगे', 'दर्पण अंत:पुर का' और 'संध्या बीती'—इन तीनों में अनर्गलता का तत्व उसी प्रकार समाहित है जैसे यह क्यमू द्वारा पठित नाटककारों आइनेस्को, पिरांदेलो, एलबी में था और कश्मीर में ये नाम अभी बहुचर्चित नहीं थे। अनर्गलता का यह रंजन पूरे क्यमू-साहित्य में मौजूद है, यद्यपि बाद में उन्होंने नगर प्रधान और नागरिक पक्षपात की समस्याओं के बदले लोक-नाटक को ही अध्ययन प्रयोग तथा प्रस्तुति का साधन बनाया। लोक नाटक में अनर्गल तत्व शायद ज्यादा सहज होता है और अनिवार्य रूप से हास्य तथा व्यंग्य की सृष्टि करता है। लोक के प्रति क्यमू के झुकाव के प्रथम सूत्र उनके 'काज़ी जी' के मंचन में मिलते हैं जो गुजरात (वस्तुत: पश्चिमी भारत) की भवाई शैली में लिखा तथा खेला जाता है। 'दर्पण अंत:पुर का' का स्वतन्त्र अनुकूलन करके जब क्यमू ने 'हर खानुक भंनि' लिखा तो फिर इस की प्रस्तुति में भवाई तथा भाण्ड दोनों का सुन्दर मिश्रण द्रष्टव्य था। वस्तुत: नाटक का आलेख इसी शैली की मांग करता है और यही इसकी समुचित प्रस्तुति हो सकती है। फिर तो क्यमू 'शुद्ध लोकरंगी' हो गए। उनके 'मंज़ुल्य निकु' (पालने का पूत), 'मांगय' (मांगना), 'त्र्‌नोव' (त्रिनाम), 'हय क्या गोम' (हाय मुझे क्या हुआ), 'हयक्या' (नामक गांव) 'तोतु तु ओनु' (तोता और आईना) शुद्ध लोक रंगी हैं। इनमें 'भाण्ड' शैली का संशोधित रूप मिलता है, यद्यपि किसी भी नाटक में हम किसी विशिष्ट भाण्ड नाटक शैली की सम्पूर्ण छाप नहीं पाते। इस निबन्ध के लेखक ने 'मंज़ुल्य निकु' को अनतनाग कालेज के खुले मैदान में १९७१ में खेला था जबकि इसी नाटक को टैगोरहाल में मखनलाल सराफ ने मंच, हाल तथा बाल्कोनी के समवेत प्रयोग से प्रस्तुत किया जो एन्विरान्मेंटल रंगमंच की बानगी लिए था। खुद क्यमू ने इसे जब 'अभिनव भारती' नाटक-क्लब की प्रस्तुति में अपनी देख-रेख में प्रस्तुत होते देखा तो वह

ग्रौर भिन्न था। मगर तीनों में देखा यह गया कि लोक शैली के नाटक में प्रस्तुति—के नवीकरण की गुंजाइश हमेशा रहती है, बशर्ते कि नाटक का कथ्य ताजगी बनाए रहे।

क्यमू के प्रयत्नों से कश्मीर के पेशेवर भाण्डों को संगठित किया गया और जिससे कमग्रज कम ग्रकिनगाम (कुकरनाग) के 'भगत भाण्ड रंगमंच' का रूपायन हुआ। मुहम्मद सुब्हान भगत ने शौकिया भाण्ड नटों का नेतृत्व करके विविध 'भाण्ड पथ्रथरों' का विधिवत और निरन्तर मंचन किया और इस रंगमंच को कश्मीर के पेशेवर रंगमंच के लिए एक ग्रादर्श मार्ग-दर्शक बनाया। श्री भगत की प्रतिभा उनके लेखन में भी फूट निकली ग्रौर वे खुद के लिखे नाटक खेलने लगे। 'तकदीर' (१९७२) उनके तीन नाटकों का संकलन है जिसके बाद उन्होंने ग्रौर कई नाटक लिखे तथा दर्जनों बार मंचित किए। शहर से बाहर ग्रामांचलों में पेशेवर नटमंडली की तरह उनके थियेटर ने नाट्यमंचन का पूरा ग्रांदोलन चलाया। ग्रौर कश्मीर का ग्राम नाटक बहुत हद तक भगत का ग्राभार मानेगा। पारम्परिक भाण्ड पथ्रथर को भी वे प्रस्तुत करते रहे। मगर उनके लिखित (मौलिक) नाटक इस लोक शैली को पूरी तरह ग्रात्मसात करने का प्रमाण नहीं देते। पारम्परिक नाट्य प्रस्तुतीकरण में वे जितने दक्ष हैं उतना ही वे नाट्यलेखन में इस शैली के प्रतिफलन पर ग्रधिकार नहीं पा सके हैं। बाद के नाटकों जैसे 'मनटनि लेजि पांजुव' (पाव वाली देग में से) में उन्होंने इस पथ्रथर की रूढ़ियों (जैसे मसखरा) तथा वार्तालाप की बुनावट का प्रयोग करके इनको पथ्रथर की समरूपता प्रदान की। जो भी हो यदि कश्मीर में पेशेवर थियेटर को उन्नत होना है तो भगतों के ग्रनुभव से बहुत सीखना होगा।

मुहम्मद सुब्हान भगत के ग्रधिकांश नाटक यदि यथार्थवादी धरातल पर लिखे ग्रौर खेले जाते हैं तो इसका यह कारण है कि ग्रधिकांश कश्मीरी नाटकों का यही धरातल है। नाटक सुरचित होता है ग्रौर प्रस्तुति बन्द शाला में प्रोसिनियम की सीमाग्रों में कल्पित जी जाती है। कल्चरल ग्रकादमी के नाट्य समारोह हों या क्लबों के स्वतन्त्र प्रोडक्शन; प्रोसीनियम रंगमंच ही प्रमुख होता है। ऐसे नाटकों में उल्लेखनीय हैं: 'छ्याय' (छाया), 'नगरव्ग्रदास्य' (नगर उदास—ले० क्यमू) 'ज़लुर' (मकड़ा) रूपयि रूप (रुपयों की वर्षा) गाशि तारूख (रोशनी का तारा—ले० सजूद सैलानी) 'मायि मंज़ छाप' (माया में छाया—ले० भूषण बेताब) 'तकदीर साज', 'ग्रादम हवा ग्रौर इबलीस'। 'सुय्या'—ले० ग्रली मुहम्मद

'आकाश पाताल'—ले० निर्दोष) 'नय न्वशा, (नई बहू) 'चपाथ' (चपत) —ले० सोमनाथ साधु तथा पुष्करभान) 'नाटक करिव बंद' (नाटक बंद करो—ले० हरिकृष्ण कौल) 'वल हरिश' (उथन पुथल) 'तलाश' —ले० अवतार कृष्ण 'रहबर') अकनंदुन—ले० गुलामरसूल 'संतोष')। इन नाटकों की प्रस्तुतियां कश्मीर का मंच विकसित करने में बहुत सहायक रही हैं। इन्होंने त्रिलोकदास, ओमकार खजांची, पुष्कर भान, सूरज तिक्कू, सुदामा जी कौल, लक्ष्मीनारायण कौल, मखन लाल सराफ, स्व० सोमनाथ सुंबली, मोतीलाल दर, बंसी मट्टू, बंसी रैना, कन्हैया दर, प्यारे रैना, उपेन्द्र खुशू, प्राण चंद्रा, रीता जलाली, आशा ज़ारू, भारती ज़ारू, काज़ी फैज़, अब्दुल मजीद आदि दर्जनों अभिनेता—प्रस्तोता—निर्देशक दिए। पर एक सत्य कश्मीरी मंच को हमेशा प्रभावित करेगा। वह यह है कि कश्मीरी नाटक अभी बहुत छोटी आयु का है तथा अनुभव समृद्ध नहीं। इसलिए प्रस्तोताओं को अन्य भाषाओं के हिंदी अनुवादों की ओर देखना पड़ता है। हिंदी अनुवादों के मंचन बड़े लोकप्रिय हैं क्योंकि अच्छे आलेख प्रस्तुती की सफलता की आधी गारंटी होते हैं। बादल सरकार मधुराय, तेदुंलकर, कर्नाड आदि के नाटकों के कश्मीरी अनुवाद की ज़रूरत नहीं पड़ती क्योंकि दर्शक हिंदी अनुवादों को समझते और सराहते हैं। यद्यपि इससे अनुवाद न होने के कारण साहित्यिक कश्मीरी नाटक विशेष लाभान्वित नहीं होता, पर कश्मीरी नाटकों का मंचन इन अन्यभाषी नाटकों के आलेख-निर्देशित-मंचन से ज़रूर प्रभावित होता है। मूल हिंदी नाटकों में, जिन को कश्मीर के मंच पर प्रस्तुत किया गया है, 'एक और द्रोणाचार्य', 'कोणार्क,' 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक', 'बिना दीवारों के घर', आदि उल्लेखनीय हैं। इससे कश्मीरी नाटकों के लेखन तथा मंचन दोनों के लिए अनुकूल हवा बन गई है।

कश्मीरी मंच नाटक का रेडियो तथा दूरदर्शन के नाटक से जबर्दस्त मुकाबिला है। अभी तो देखा यह जाता है कि इन सरकारी संस्थाओं से प्रसारित नाटक ही प्रायः मंच पर आ रहे हैं। इससे मंच के मौलिक विकास और स्वाभाविक उन्नति में कोई सहयोग नहीं मिलेगा। अभी हमें वास्तविक और समर्पित मंच से ही लेखक, प्रस्तोता, अभिनेता पैदा करने हैं जो मंच को सच्चा जीवनदान तथा अस्मिता प्रदान कर सकें।

●

# कश्मीरी साहित्य में हास्य-व्यंग्य

—श्री मशअल सुल्तानपुरी

संसार की भाषाओं में विरल ही ऐसी कोई भाषा होगी जिसके साहित्य में हास्य-व्यंग्य न हो। हंसना-हंसाना मानव स्वभाव की एक ऐसी ही नैसर्गिक प्रक्रिया है जैसे रोना-रुलाना। किसी न किसी रूप में अभिव्यक्ति पाना भाव की विवशता है और नियति भी। अन्य भाषाओं के साहित्य की तरह ही कश्मीरी में भी अन्य भावों की तरह 'हास' नामक भाव की अभिव्यक्ति यथा सम्भव हुई है। इस भाव की अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों को पहचानने एवं इनका नामकरण करने की बात तब पैदा होती है जब हम इस पर गम्भीरता से विचार करने लग जाते हैं।

एशियाई भाषाओं के समीक्षक प्राय: अंग्रेज़ी साहित्य के महत्व और इस की समृद्धि एवं विशालता को देख कर या तो हीन भावना से ग्रस्त होकर अथवा देखा देखी के कारण इन भाषाओं के साहित्य का स्तर निर्धारित करते हैं। वे यह भी देखते हैं कि क्या अंग्रेज़ी साहित्य की विभिन्न विधाओं की तरह ही इन भाषाओं के साहित्य में भी इसी प्रकार की विधाएं मिलती हैं कि नहीं। हास्य-व्यंग्य के साथ भी ऐसा ही हुआ है। अंग्रेज़ी साहित्य में इसके लिए ह्यूमर (*Humour*) शब्द का प्रयोग हुआ है और इसी के अन्तर्गत इसकी शाखाएं-प्रशाखायें— उदाहरणत: आइरनी (*Ironey*), पेरोडी (*Parody*), जोक (*Joke*), विट (*Wit*), सेटायर (*Satire*) तथा लेम्पून (*Lampoon*) आदि—आती हैं। उर्दू के साहित्यकारों ने इन्हीं शब्दों से अर्थ साम्य रखने वाले शब्दों को खोजा और सेटायर के लिए तन्ज़, विट के लिए नग्ज़, तथा ह्यूमर के लिए मिज़ाह शब्द का प्रयोग किया। कश्मीरी में अभी तक हास्य-व्यंग्य से संबन्धित एक ही पुस्तक प्रकाशित हुई है। अपने किसम की यह इक-

लौती पुस्तक अमीन कामिल ने लिखी है और इसका नाम है 'काशिरि असन त्रायि'। इस पुस्तक के लेखक ने सेटायर के लिए 'हजू', लेम्पून के लिए 'हजु़ल', (*Burksque*) के लिए 'टीफ', मांकपोयट्री के लिए 'टसनु' विट के लिए 'ज़ीरकी' तथा ह्यूमर के लिए ज़राफत' शब्द का प्रयोग किया है। अंग्रेज़ी साहित्य में इन शब्दों का एक निश्चित एवं विशेष अर्थ है; अन्य भाषाओं में हूबहू इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त होने वाले शब्दों का मिलना असंभव है। सेटायर के लिए कामिल 'हिजू' शब्द का प्रयोग करते हैं। 'हिजू' शब्द का अपनी अलग अर्थ छवियां हैं जिस कारण इसका सेटायर शब्द के अर्थ के साथ कोई साम्य नहीं बैठता ? फारसी साहित्य में फिरदौसी का रचा तथा महमूद गज़नवी को कहा गया 'हिजू' प्रसिद्ध है जिस में हास्य नहीं के बराबर है :—

अगर शाह रा शाह बूदे पदर
ब सर बर निहादे मरा ताज ज़र
अकेर माहरे शाह बा तू बदे
मरा सीमोज़र ता बज़ानो बदे
परस्तार ज़ाहद नयायद बकार
बगरचे बूद ह किम व शहरचार

(बादशाह यदि बादशाह का पुत्र होता तो सोने का मुकट पहने सोता इसकी माँ यदि कुलीन महिला होती तो मैं सोने चांदी में गर्क हुआ होता। गुलाम का पूत कुछ भी नहीं कर सकता यदि वह बादशाह भी हो।) उर्दू साहित्य में सौदा के 'हजूया कसीदों' में कहीं-कहीं हास्य के पुट के उदाहरण मिलते हैं; पर, अनेक स्थलों पर इन में साहित्यकता दृष्टिशोचर ही नहीं होती। इसलिए यही संगत लगता है कि हम इन अंग्रेज़ी शब्दों और इनकी अर्थ छवियों को ध्यान में रखे बिना ही अपने साहित्य के स्वभाव को दृष्टिगत रखते हुए इसमें हास्य की विद्यमानत: को रेखांकित करें। यह बात निर्विवाद रूप से स्वीकारी जा सकती है कि अंग्रेज़ी साहित्य के अन्तरराष्ट्रीय प्रभाव के पश्चात् अनेक भाषाओं के व्यंग्य-लेखकों ने इसी के स्तर को दृष्टि में रखते हुए लिखना आरम्भ किया। पर ऐसा उन्हीं लेखकों ने किया जिन्होंने अंग्रेजी भाषा और साहित्य का अध्ययन किया था।

कश्मीरी साहित्य में हास्य के उदाहरण हमें ललद्यद (कश्मीरी की आदि कवयित्री) से ही प्राप्त होते हैं। पर इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता

कि मकबूल शाह क्रालवारी तक कश्मीरी हास्य का अधिकांश भाग 'हिजू' ही है। इस में सामजिक कुरीतियों या व्यष्टि और समष्टि की दुर्बलताओं पर चोट की गई है। उदाहरण के लिए ललद्यद का निम्न 'वाख' (वाक्य) देखिये :—

दीवु वटा दी वर वटा, हेरिव्वो'न छुय यीकुवाठ
पूजकस करख हूठु बटा, कर मढस तु पवनस संगाठ।

[देव (मूर्ति) भी पत्थर का है और देवालय भी पत्थर (निर्मित) है। (ग़ौर से देखो) ऊपर-नीचे एक सी दशा है। अरे हठी पण्डित ! तू किसे पूजेगा (बेहतर यही है कि तू) मन और पवन (प्राण) का समन्वय कर—याने प्राणायाम द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध कर।]

या हजरत शेखुलआलम का यह 'श्रुक' (श्लोक) :—

अलिगा प्वोंखो व्वफुके हवसै छलस छु ज़ागान अकिस अख
क्या छ गुमानु अस्य छि खासै, तति नो म्वकलित्र सासुमंजु अख॥

[बिना परिश्रम के कमाने के लिए तुम लोगों ने विद्या पढ़ी और तुम एक दूसरे को छल-कपट से नीचा दिखाना चाहते हो, तुम्हें यह गुमान हो गया है कि हम विशिष्ट हैं (पर याद रखो) वहां (परमात्मा के न्यायालय में) हजारों में से एक भी बरी नहीं होगा।] इस 'श्रुक' में घमण्डी एवं कपटी पण्डितों को चेतावनी दी गई है।

अथवा निम्न 'श्रुक' :—

व्वफुवतु अनिवो र'निवोलवखुरे, व्वफुवतु वखुरे गह्य गह्य चोग
व्वफुवतु छ्ययाव मलुसुन्जि क्वकुरे, तम्यति मालि प'ह्य श्वांय थुय वांग

[मुफ्त का अन्न लाओ और अत्यधिक मात्रा में पकाओ। मुफ्त का खाने से सक्रियता छू मन्तर हो जाती है—जीव आलसी बनता है। मुफ्त का खाना मुल्ला के मुर्गे ने खाया था और उसने भी लेटे-लेटे ही बांग दी।] इस तरह के व्यंग्य का उद्देश्य जनता के व्यवहार में सुधार लाना था। 'हिजु' में व्यंग्य, ठट्ठा, उपहास, चुटकी, छींटा कशी आदि बहुत सी चीजें आती हैं।

अब्दुल अहद नाज़िम रसूलमीर एवं मकबूल के समसामयिक थे। ये गज़ल, नात और 'हिजू' लेखक के रूप में विख्यात हैं। इन के हिजू या कलाम में 'हिजू' के विभिन्न प्रकार, जैसे व्यंग्य, मज़ाक और उपहास, मिलते हैं। इनका 'पिशनामु' (पिस्सू वृत्तान्त) मज़ाक क़िस्म के 'हिजू' का एक अच्छा

उदाहरण प्रस्तुत करता है। इन्हीं के लिखे हुए गीतमांगल्य 'असि बूज़ अंगरीज्य जरी आव' और 'शा'द्य मुबारख' में किसी परिवार पर छींटाकशी की गई है :—

सुच़ चाख गज़ ह्यथ पति मे बरय, मीनिथ छ़ुनुनख सर क्यहो पाय
पतुपाव ल'ज़नख पुशिपेस नरी, असिबूज़ अंगरीज्य जरी आव ॥

[(उनके घर में) दरजी गज़ लेकर-पिछवाड़े के दरवाज़े से घुसा और ऊपर से नीचे तक सब माप लिया अन्त में आस्तीनों के लिए कुछ (कपड़ा) नहीं बचा। हमने है सुना कि अंग्रेज़ी जरी आयी है।]

यह गीत-मांगल्य केवल 'हिजूया ही नहीं'। इस में चुटकी और ताना हा नहीं व्यंग्य का पुट भी है। इस गीत-मांगल्य के सभी छन्दों में शब्द-क्रीड़ा से हास्य उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है इस कारण यह उस हास्य का एक अच्छा उदाहरण है जिसे कामिल 'शब्दु ज़राफत' कहते हैं। अब्दुल अहद आज़ाद के अनुसार यह गीत मांगल्य नाजिम ने अपने फूफड़ से नाराज होने पर रचा था। आजाद नाजिम को कश्मीर का खाकानी मानते हैं। पर इस बात को स्वीकार नहीं किया जा सकता... यद्यपि इनकी रचनाओं में हिजू की अच्छी मिसालें भी प्राप्त हैं। 'शा'द्य मुबारख' (शादी मुबारक) नामक-हिजू में नाजिम ने किसी कुदु साहब के 'क्वकरों' के यहां शादी करने पर निम्न प्रकार के शेर कहे हैं :—

ब्रोंठु आयि क्वकरबायि अजिमस तु अजि प्रायि
अजि जेछि तु अजि छ़्वचि कुदु च्यचि मुबारख।

[क्वकर महिलायें (मुर्गियां) अगवानी को आईं। इन में कई मस्त थीं और कई अण्डे सेने की अवस्था की जैसी। कई लम्बी थीं, कई ठिगनी। अरे चाचा कुदु साहब तुम्हें मुबारख हो।]

इसके अतिरिक्त नाज़िम ने महमूद गामी की एक कविता—'रिन्दु' छ़ुख जिन्दु कथ आवस सूत्य'—की पैरोडी लिख कर किसी अब्दुल्ला बाबा पर 'हिजू' किया है। इससे इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि कश्मीरी में पेरोडी-लेखन अंग्रेज़ी साहित्य के प्रभाव के पहले से ही किया जाता था।

कश्मीरी हास्य-व्यंग्य को मकबूल शाह क्रालवारी की देन सर्वाधिक है। 'पीरनामु' तथा 'ग्रीस्य नामु' नामक आदि रचनाओं में रचनाकार ने पीरों किसानों पर व्यंग्य किया है। इस व्यंग्य में हास्य एवं साहित्यिक शान अति

स्वल्प मात्रा में विद्यमान है। ये कृतियां अभिहस्य का अच्छा नमूना प्रस्तुत करती हैं :—

अचान छुम लरज़ु बूज़िथ ग्रीस्य सुन्दनाव / हतस वोर्पयस छय कुन्य मुच ग्रीस्य अख गाव / खरीदारन दहन व्योन व्योनस्व हा'वुन/पतोलाकन छम्बस प्यठ डुलु त्रा'वुन।

[किसान का नाम सुनते ही डर लगता है। इसने सौ रुपये (मंहगे दामों) में एक गाय बेची है। वह गाय उसने दस (बहुत से) खरीदारों को अलग-अलग दिखाई और अन्त में उसे टीले से गिरा दिया।]

और इसी प्रकार 'परिनामु' में :—

ओ'डुय अलहमदु प'र्य-प'र्य छख गछान ज़ीर / छि नेरान ह्यथ कलमदान अ'स्य सपुन्य पीर/परान पनुने कुरानुक्य कृत्य आये/करान छिख मानि व'न्य-व'न्य वारू आये।

[(पीर) आधा ही 'अल हमदु......' पढ़ते हैं और हाथ में कलमान लेकर कहते हैं कि हम पीर बन गये हैं। वे अपने ही (कृत्रिम) कुरान के कितने ही आयात पढ़ते हैं तथा (मुरीदों को) इनके अर्थ समझा-समझा कर अपनी ओर कर लेते हैं।] मकबूल शाह कालवारी की व्यंग्य-वगीतियां कहीं-कहीं अग्राह्यता की सीमाएं छूती हैं; इतना ही नहीं बल्कि अपशब्दों से युक्त भी होती हैं :—

करूज़ तस दारिहे अख ग्रीस्य गानाह/खबीसाह ज़िस्त सूरथ बदजबानाह

[एक बहुत ही बुरा, खबीस, ज़िस्त सूरत और बदजबान किसान उसका ऋणी था।] ऐसा लगता है कि इन रचनाओं में मकबूल ने व्यक्तिगत रंजिश को ही महत्व दिया है। इन रचनाओं के किसी भी स्थल पर सहानुभूति के भाव की अभिव्यक्ति नहीं हुई है जिस कारण यह व्यंग्य निम्न कोटि का हो गया है। रचनाकार का उद्देश्य इन वर्गों (पीरों तथा किसानों) का सुधार करना या इन की कमज़ोरियों को अभिहास द्वारा उजागर कर इनकी ओर ध्यान आकृष्ट करना नहीं, अपितु इन्हें बदनाम और ज़लील करना है। विद्रूपकाव्य लेखन में मकबूल सिद्धहस्त हैं :—

अवल नाजिन्स छुय शहरुक तु गामुक/बन्या समवात जांह कन्दुक तु ज़हरुक/दोयिम रावी फिज़ाहत च्ये कलामुच/गछी व्यठपूठ कथ स्वय पूरु गामुच/दपुन योद 'शौक' आसी तथ दपख 'शोक'/.........

[पहले शहरी और ग्रामीण का जिन्स मिलता ही नहीं—यह ऐसे ही नहीं

मिलता जैसे मिश्री और विष आपस में मिल नहीं सकते । दूसरा तुम्हारा मानक उच्चारण नहीं रहेगा । यदि तुम्हें 'शौक़' कहना हो तो 'शोक' बोलोगे ।] मक-बूल ने उक्त पंक्तियों में भी ग्रामीणों पर कटाक्ष एवं उपहास किया है ।

हाजिन ग्राम निवासी वहाब परे की कविता आध्यात्मिकता का पुट लिये हुए है । इस तरह की कविता में हास्य के उदाहरण बहुत ही कम मिलते हैं । ऐसे उदाहरण यदि मिलें भी तो उन में किये गये व्यंग्य का उद्देश्य सुधार करना होता है :—

हाजियां छिम वारुयाह मोलूम डीठिम हज करि
केह गरिथ जन संगखारा केंह वुछिन आमुत्य मरिथ ।

[मेरा ऐसे अनेक हाजियों से परिचय है जिन्हें मैंने हज करने के बाद देखा है । कई पाषाणमूर्तिवत् और कई मरियल से हैं]

लालु लखयमन नामक कवि का व्यंग्य हास्य से युक्त एवं स्पष्ट है । इन्होंने एक शादी के अवसर पर हुए झगड़े पर यों व्यंग्य कसा है :—

युयुय आंगन अन्दर चाव/तिथुय क्वोर कावुनुय टाव/दोपुन म्ये आव/
प्ययममा मार लतिये ।

[जैसे ही (वह) आंगन में घुसा उसी क्षण कौआ बोला । उसने सोचा कि बुरा शकुन हुआ है (संभव है) मेरी पिटाई हो ।]

हां, कवि इस 'खान्दर नामु' नामक कविता में साहित्यिक शान कायम नहीं रख सके हैं :—

पथर वुज़ुकिस बरसतल/दपान पोवुख ज्वडीशल/च्वलुस नीरिथ तती ज़ल
क्वोरुन येज़ार लतिये ।

[कहते हैं कि घर के प्रमुख द्वार पर ही जोडीशाल को नीचे गिरा दिया । उसकी लघुशंका निस्सृत हुई और उसने पाजामा गीला कर दिया ।]

हसन गनाई की 'ब्यवूज नामु' तथा 'बुनिल्य नामु' नामक रचनाएं भी व्यंग्य के अन्तर्गत आती हैं । उन दोनों रचनाओं में हास्य उत्पन्न करने की कोई सायास चेष्टा नहीं की गई है :—

नंगय द्राथि नरमादु यकसान गत्र/तमाह सूर सार्यन म्य दोप फान गव/
निवान छालु ज़न हरनु कम कम गन्दर/ गगर ज़न र'टिन काठुब्रार्यन
अन्दर

[(भूचाल आने पर) सभी निर्वसन बाहर निकल पड़े, स्त्री-पुरुष का कोई

भेद नहीं रहा। सब निराश हुए। मुझे लगा कि सबकुछ समाप्त हो गया। सुन्दर-स्वस्थ बालक ऐसे कूदते जैसे हिरण कुलांचें भर रहे हों। (भूंचाल ने) (सभी को) मानो चूहों की तरह पिंजरों में बंद कर दिया।] परन्तु 'व्यवूज तु नामु' में इसका रंग विद्यमान है :—

मुलकस छु व्यवूज तु यच़ गोचारस/पन्जु छय म्वोकुदम तु ग्रीस्य छिनु डाय/तोति छिनु हंगदार अथ शुमारस/ सुह गल्य तु शाल शीकारस द्राय।

[हर जगह अराजकता मची हुई है। बन्दरियां नबरदार हो गई हैं किसान न होने के बराबर हैं। फिर भी कर्ता धर्ता इस गिनती में नहीं। (कैसा ज़माना आ गया।) शेर समाप्त हो गये और श्रृंगाल शिकार को निकल पड़े।]

अब्दुल अहद नादिम नातिया कलाम लिखने वाले शायरों में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। उनके कलाम को पढ़-सुन कर ऐसा लगता है कि अल्लाह ने उन्हें नात-रचना करने के लिए ही जन्म दिया है। हास्य उनका क्षेत्र नहीं; न ही उन्होंने लोगों पर कटाक्ष करने का प्रयत्न किया है। पर सुधार के दृष्टिकोण से उन्होंने ऐसी कुछ कविताएं रची हैं जो सामाजिक दुर्बलता की ओर अवश्य इंगित करती हैं। इनकी वे रचनाएं व्यंग्य गीति का एक सुन्दर उदाहरण हैं :—

आ'लिम वख तुक्य तालिब छि द्यारण/ज़ा'लिम ज़न छी रशवत खार/ तमुहन वुनु वा'ज्य बीनादारन/तिज़ि ओस त्यलि कुफारन आर/पीर कर्य गुमराह नफसि अ'मारन/नीली वा'तिन वोज़ इज़हार/पानस पायन छि मरतबु खारन/तिज़ि ओसत्यलि कुफारन आर।

[समय के विद्वानों को धन का लालच है। ये मानों घूसखोरों की तरह ज़ालिम हैं। दृष्टि-सम्पन्न व्यक्तियों को लोभ ने कहीं का नहीं रखा। भौतिक वस्तुओं की चाह ने पीरों को पथ भ्रष्ट कर दिया। ये अपनी बड़ाई आप करने में लगे हैं।]

हबीबुल्ला हकीम के रेख्ता में अच्छा व्यंग्य पाया जाता है। फारसी कश्मीरी भाषाओं का सम्मिश्रण इसे और भी जानदार बनाता है। पति-पत्नी की नोक-झोंक से संबन्धित 'जनानि-हुन्ज़ ज्यव' (पत्नी की वाणी) नामक पद्य इसकी एक उल्लेखनीय मिसाल है। इन्हीं की रचना 'सहलाब नामु' (बाढ वर्णन) में हास्य उत्पन्न करने की अच्छी कोशिश है :—

यसनु पकुनुय तगान तस लगान दब/यी प्यवान अयुमंज़ु तथ गछ़ान रब/

अथ दपान अहु मंजु फुटुन्य बानु खार/गव कुनुय खनुबल खादुन्ययार।

[जिसे चलना नहीं आता वह गिर पड़ता है । जो वस्तु हाथ से गिर पड़ती है वही बरबाद हो जाती है—इसे ही हाथ आई वस्तु का नष्ट होना कहते हैं । खन्नाबल से खादनयार तक पानी ही पानी हो गया है । ]

हबीबुल्लाह ठकुर अपनी कथा कविता 'अलुशहर' में विद्रूप और कटाक्ष से काम लेते हैं। मकबूल शाह कालवारी के जिन्होंने ग्राम वासियों पर कटाक्ष किये हैं, जवाब में ठकुर ने नगर वासियों की खूब खबर ली है। 'अलुशहर' नामक कविता में वे लिखते हैं कि एक ग्रामवासी युवक को एक नगर में रहने वाले तेली के यहां रात बितानी पड़ी। यह युवक घोड़ी पर आया था जो बच्चा जनने वाली थी। संयोगवश घोड़ी ने उसी रात बच्चा जना। बछड़े को देख कर तेली समझ गया कि उसके बैल ने बच्चा जना है :—

म्यदान्दस गुर्य बछेरा जामुतुय छुम/न्यसुफ इक़बाल अज़म्ये आमुतुय छुम/
छय तिलुवान्यन कसाबस गिलनु दीवान/म्य प्याव अज़ दान्द य'च का'लय
छय तोशाना

[मेरे बैल ने बछेड़ा जना है। मेरे घर आज आधी सम्पदा आई है। तेली की पत्नी (मारे प्रसन्नता के) सिर हिला रही है और बहुत खुश हो कर कह रही है कि बहुत मुद्दत के बाद मेरे बैल ने बच्चा जना है। ] बाद में जब युवक बछेड़े पर अपना अधिकार जताने लगा और कहने लगा कि बछेड़ा घोड़ी ने जना है तो मार मार कर उसका कचूमर निकाला गया। इसी प्रकार :—

छु मशहूर गामुक गछी यली शहर/गछयन सूत्य आसुन्य कमज्यादु तहर/
अदय कथ करयस स्योद बुछस शहरयार/बज़ुज़ डा'ल्य आसी तु तेल्यस
ज़हार। दप्यस व्वोथ स्यदुय छुय च्य अमरा कदल /ल'जी योर मेहनथ च्य
आई वदल।

[यह बात सब जानते हैं कि जब एक ग्रामनिवासी शहर जायेगा तो उसे कुछ न कुछ साथ (भेंट चढ़ाने के लिए) ले जाना ही होगा, तभी एक शहर में रहने वाला उससे सीधे मुंह बात करेगा। यदि गांव वाले ने कोई भेंट न दी तो नगर निवासी को यह बहुत ही बुरा लगेगा। वह ग्रामीण से यह कहने में संकोच नहीं करेगा कि यहां पहुचने में तुम्हें काफी मेहनत करनी पड़ी अब सीधे ही अमीरा कदल (बस अडे) पहुच जाओ।]

मकबूलशाह कालवारी के 'ग्रीस्यनामु' की तरह ही अब्दुल गफ़ार फ़ारिग़

ने मलुनामु' (मुल्लाह वृत्तान्त) तथा मिरज़ा मीर साहब ने 'म्वकदम नामु' (नम्बरदार वृत्तान्त) लिखा है। ये दोनों रचनाएं व्यंग्य प्रधान हैं और इन में मुल्लाह तथा नम्बरदार वर्गों पर व्यंग्य किया गया है। इस व्यंग्य में पैनापन एवं कड़ुवाहट अधिक है और हंसाने की युक्तियां बहुत कम हैं।

गुलाम अहमद महजूर आधुनिक कश्मीरी कविता के बहुत ही महत्वपूर्ण एवं सशक्त हस्ताक्षर हैं। इनका काव्य अनेक विशेषताओं से युक्त है। ये एक ऐसे शायर हैं जिन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम के दिनों शौर्य एवं ओज के तराने गाये और सन् सैंतालीस के बाद राजशाही के चंगुल से आज़ाद होने पर खुशियां मनाई और आज़ादी के गीत गाये। कालान्तर में इन्हें लगा कि जो सपने हमने देखे थे वे सच होते दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं — इनका मोह भंग हुआ — और उन्होंने इस तरह की आजादी पर चोट करते हुए लिखा :—

यि आज़ा'दी छय स्वर्गुच हूर यि फेरया खानुवथ खानय/फकत केंच़न गरन अन्दर छयमारन ग्रायि आज़ा'दी/गेमुत्य दम फुटय छि सा'री बेकरारी छख दिलन अन्दर/दपान वनुहा'व वनुन अहवाल असिमा लायी ओज़ा'दी।

[यह आज़ादी स्वर्ग की अप्सरा है। क्या यह घर-घर भटकेगी ? केवल कुछेक घरों में ही आज़ादी अपना जलवा दिखा रही है। सभी लोग हक्के-बक्के से रह गये हैं क्योंकि उनके हृदय में बेकरारी है। वे कहते हैं कि हम अपना हाल सुनाते पर कहीं आज़ादी हमें मार न डाले।] यह व्यंग्य निम्नस्तरीय या ओछा नहीं है बल्कि इस में अनायास ही व्यंग्य की सृष्टि हुई है। महजूर के ही समकालीन अब्दुल अहद आज़ाद थे जिन्होंने महजूर पर, 'महजूर सोबन ब्बोर अकिस नटुवारि पखरपूर' [महजूर साहब ने एक छोटे से घड़े में पखरपूर (नामक गांव को) भर दिया] नामक पेरोडी रच कर, व्यंग्य किया इसी प्रकार के कई शे'र उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र मिल जाते हैं जो बहुत ही सुन्दर एवं चुटीले व्यंग्य के उदाहरण हो सकते हैं। इन्होंने महजूर की एक गज़ल 'तम्मनाह चानि दीदारुक म्य छुम यम्बुरज़ले ब्वोम्बरो (प्यास तेरे दरस की नर्गिस को है रे अलि सुनो) की पेरोडी यों लिखी है :—

वनय क्याह यारु कम कम नारु त'त्य यथ आ'विलिस पानस/करियेंतुकालि अखतावन वन्दस मंज़ का'गुरे ब्वोम्बरो/वसान पथकालि ओस पा'गमबरन जिबरील असमानय। सुथोव सा'न्यव वतनदाख तु दरवेशव गरे ब्बम्बरो।

[अरे मित्र, मैं तुम्हें क्या बताऊं कि मेरे इस सुकोमल गात को, गर्मी में सूर्य

ने और सर्दी में कांगड़ी ने, कितना जला दिया। कहते हैं पुरा काल में पैगम्बरों के पास जिबरील आसमान से उतर कर आता था पर उसे भी हमारे (आजकल के) 'देश प्रेमियों' और दरवेशों ने घर में ही (छिपा के) रखा।] इस पेरोडी में कश्मीरियों की गरीबी तथा पारम्परिक प्रेम और सोमनस्य पर व्यंग्य किया गया है।

सन् सैंतालीस तक, कश्मीरी साहित्य-सर्जन का चहुं मुखीविकास इसके बाद ही आरम्भ हुआ, कश्मीरी में हास्य-व्यंग्य साहित्य विशेष उल्लेख योग्य नहीं था और इस में कोई विविधता भी नहीं थी जो अन्य भाषाओं के इस प्रकार के साहित्य में पाई जाती है। इस समय तक गद्य में हास्य-व्यंग्य की खोज करना निरर्थक ही है। सन् सैंतालीस के बाद ही कश्मीरी साहित्यकारों को गद्य ने आकृष्ट किया जिसके परिणाम स्वरूप कहानी लेखन का श्री गणेश हुआ। लेख लिखे जाने लगे। नाटक लेखन, यद्यपि इस ओर ध्यान दिया गया था, की ओर और गम्भीरता से ध्यान दिया जाने लगा। रेडियो नाटक लिखे जाने लगे और हास्य-व्यंग्य लेखन के प्रति, किसी सीमा तक, अधिक रुचि दिखाई जाने लगी।

मिर्ज़ा आरिफ जो महजूर और आज़ाद के हम असर रहे हैं, सन् सैंतालीस के बाद के साहित्यकारों के भी हम असर हैं : इस असर के कारण इन्होंने भी व्यंग्यात्मक रचनाएं की हैं। इनके व्यंग्य के दर्शन हमें इन की काव्य कृतियों में जगह-जगह होते हैं। इन्होंने रूबाई छन्द को विशेष रूप से हास्य व्यंग्य का संवाहक बनाया है। इनके व्यंग्य का शिकार सामाजिक कुरीतियां, लोकतन्त्र, शासन तथा शोषक वर्ग बना। महजूर की तरह ही इन्होंने भी स्वतन्त्रता-आन्दोलन में, अपनी लेखनी द्वारा, योग दिया। उन्हीं की तरह जब इनका भी मोह भंग हुआ तो उसे यों अभिव्यक्त किया :—

गरीबन हाल द्युत ज़र द्युत तु सर द्युत/कमोवुन राज पनुन्यन लीडरन क्युत/तिमन शाही अमिस तलक़ीन सबरूक/ युहोय आसान दुहे क्वखा' नियन क्युत।

[ग़रीब ने अपना वर्तमान, धन और सिर दे दिया और अपने लीडरों के लिए राज कमाया। उनका शाहाना ठाठ है और इसे सब्र करने के लिए बार-बार कहा जा रहा है। यह ग़रीब बेचारा हर वक्त कुरबानी देने के लिए होता है।]

मीर गुलाम रसूल नाज़की रूबाई लिखने में सिद्धहस्त हैं। ये प्राय: हास्य-

व्यंग्य के लिए इसी छन्द का प्रयोग करते हैं। इनके व्यंग्य-बाणों का लक्ष्य हरेक वर्ग तथा प्रत्येक सामाजिक कुप्रथा बनती है :—

नज़र या हज़रते महबूबुल आलम/शरीफन त्रठ गरस ज़ार्येन नज़र कर/
बन्दान छी ज़ ुव जरान हीं लाल हेरन/मुरीदन चरसु बायार्येन नज़र कर/
दपान गामस अंदर का'दिर सबा आव/घनअ्र क्याह जन तिमन शोठन बवा आव जनानव वाजि कजि मर्दव वगुव्य कुत्य/नियाज़न डेर गय क्वकरन व्वबा साव।

[हे हज़रत महबबुल आलम ! इधर भी एक दृष्टि डालिये । देखिये यहां शरीफ रोटी तक को तरसते हैं और जुआरियां के पौ बाहर हो रहे हैं । देखिये, यहां चरस की तस्करी करने वाले (अपने घर की) सीढ़ियों तक हीरे-जवाहरात से जड़ते हैं ।

कहते हैं गांव में कादिर साहब (कोई नेता या पीर) आ गया। (उस का स्वागत यों हुआ) जैसे उन लोगों का बाप आ गया हो । स्त्रियों ने अपने आभूषण बेचे और मर्दों ने अपने घरों की चटाइयां तक भी। (इस प्रकार जो धन इकट्ठा हुआ उससे उसके लिए) अनेकों नियाज़ हुए और बेशुमार मुर्गे ज़बह किये गये।]

इन रुबाइयों में व्यंग्य और कटाक्ष का सुन्दर समन्वय है।

आधुनिक कश्मीरी कविता को नया मुहावरा एवं नया मोड़ देने वाले कवि दीनानाथ नादिम के व्यंग्य बाण समाज के शरीर में 'गम्भीर घाव' कर जाते हैं पर इन का आभास तुरन्त नहीं होता। पहले ऐसा लगता है कि कवि इन तीरों से स्वयं के शरीर को बेधते हैं पर वास्तव में उनके वार का लक्ष्य समाज होता है। इस दृष्टि से इनकी 'मायाज़ाल' (मायाजाल) नामक कविता विशेषतय: उल्लेखनीय है :—

ज़िंदुबाद म्यहज़ बस चोनुय स्नेह/ज़िन्दुबाद च़ ु धोखा अदुहज़ प्य ज़िन्दुबाद खबर कति आयी नेह/असिवोत वुछान यी हाल लगय/यि छ ु दुनियाह मायाज़ाल लगय।

[ज़िन्दाबाद ! (श्रीमान जी)मुझे बस आपके प्रति ही स्नेह है। ज़िन्दाबाद!! आप पदच्युत हो गए, गिर गये। ठीक है, गिर जाओ। ज़िन्दाबाद !!! न जाने तुम कहां भाग खड़े हुए......। अरे भई, हम तो यही दृश्य कब से देख रहे हैं : यह दुनिया एक मायाजाल ही तो है।]

प्रोफ़ेसर रहमान राही की कविता 'यथ समयस मंज़ (इस समय में) तथा 'मा'फी नामु' (क्षमा-प्रार्थना) व्यंग्य के अच्छे उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। 'मा'फी नामु' इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेख के योग्य है। इस में कवि ने तत्कालीन व्यवस्था पर व्यंग्य किया है :—

म्यज़न पो'र मदअ्र चानिशाही मिज़ाज़ुक़/पज़रगव मुदाछ़ुम वनुन ज़ुव बचावुन ।

[मैं तुम्हारे शाही मिज़ाज का पूरी तरह से कायल हूं। पर सत्य तो यह है कि मुझे अपनी जान बचाने से गरज़ है।]

इसी प्रकार की एक नज्म मुज़्ज़फर आज़िम की 'क़सीदह बशानि जम' है :—

वतु म्योन्ड सुति तुहुन्दुय ख'राथ/ओ'र ज़ुवमुति तुहुन्दुय एहसान ।

[पेट के लिए अन्न वह भी आप ही की दया से/स्वस्थ शरीर वह भी आप का ही एहसान।] ऐसी नज्मों में साहित्यिक शान बरक़रार रखने की पूरी कोशिश की गई है।

मुहम्मद अमीन कामिल ने हास्य-व्यंग्य को अपनी कविता में एक विशेष स्थान दिया है। इस विषय में इनका लहजा अनुपम है। हास्य का मधु चखते-चखते अनजाने ही व्यंग्य निबौरी के स्वाद का एहसास होता है :—

प्ययोम क्या हताम याद अ'छ़ फोर्येम/व्याख अख नवजवान अदीब सपुन/
सानिवतनुक शिहुल हवा वह वह/अस्यछिहवहस प्यठ बचान खा'ली ।.

[कुछ याद आया था कि आँख फड़की, एक और नौजवान साहित्यकार बना। वाह-वाह हमारे वतन की शीतल हवा, हम केवल हवा पर ही जीते हैं।]

अन्य कवि, जो हास्य-व्यंग्य लेखन के कारण ही प्रसिद्ध हुए हैं खजर मगरिबी, मक्खन लाल महव, बकवास कश्मीरी तथा शरीफ-उ-दीन परवाज़। मगरिबी का 'व्यमारनामु' (बीमार नामा) हास्य रस का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। मुहम्मद अमीन कामिल के अनुसार इस रचना में 'व्यंग्य भी है हास्य भी और नसीहत भी। यह कृति अर्थ के स्तरों को खोलने की दृष्टि से पढ़ी जानी चाहिए मात्र मनोरंजन के लिए नहीं। यह रचना पाठक को एक दुख का एहसास कराने में समर्थ है। मगरिबी हर बात को हास्य का विषय बनाने में सिद्धहस्त हैं। महव की रचनाओं में व्यंग्य कम और हास्य अधिक होता है। वे हर वस्तु का मज़ाक़ उड़ाते हैं। मज़ाक़ का निशाना ये अपने आप को ही

बनाते दीखते हैं पर इशारा किसी अन्य की ओर ही होता है।

वुथ पनुन पोडर 'मथिथ तमि क्वोर सफ़ेद-दारे छ'च. म्यति वस्मु सूतिन क'र सियाह।

[उस (स्त्री) ने पाऊडर से अपना चेहरा गोराया मैंने भी अपनी श्वेत दाढ़ी 'केशकाला' लगा कर काली की।] इनका हास्य सदा श्लीलता की सीमाओं में ही नहीं रहने पाता। बकवास कश्मीरी गद्य-पद्य दोनों विधाओं में लिखते हैं और समानरूप से दोनों में हास्य की सृष्टि करते हैं। कश्मीरी की एक मासिकी 'नेब' में इनके द्वारा लिखे गये पत्र पठनीय हुआ करते थे। उनका व्यंग्य कहीं कहीं अमर्यादितसा हो उठता है।

अ'सि ख्यव मुफ्तुक कांह का छा मामाअ'सि त्वोग अस्य गय'वखतुक्य द्यव

(हमने मुफ्त का खाया इससे किसी को क्या गरज़। हमें अपना काम बनाना आया हम तो समय के वीर हैं।)

शरीफु-द्दीन परवाज का हास्य-व्यंग्य बिलकुल सपाट होता है यही कारण है कि ये नजीर अकबराबादी की तरह निपट लोक-कवि लगते हैं। इनकी रचनाओं में इसी कारण कल के प्रति कोई आग्रह नहीं है।

मल छुसुहेरिबों नु सोर्यसु'य पानसास्वख छा अम्यसु'य अ'क्यसु'य आनसा वा'तिथ ग'छिस्व' हरकुनिखानय वोहवान गरिकिस द्यग लिस दानस/पतु छय ल'ज्यमु'च 'डाकस' 'फानस'/दब दिथ च्वोक ग'लु'रा वान बानस/ ख्यनु विज़ि सु'ह छह कामिविज़ि ग'न/चिहय राउ शिकज म'च।

(नख से शिख तक मैल में डूबी। एक क्षण भी कहीं करार नहीं। घर-घर घूमना उसका काम। निज घरके चूल्हे पतीले को कोसती। क्षण-क्षण अपशब्दों की रट लगाती। पटक पत्र का पेंदा गलती खाने के समय शेर, काम के वक्त सुस्त— इसी को कहते हैं मूर्ति दलिदर की)

सजूद सैलानी अपनी क्षणिकाओं, गजलों और कार्टूनों में हास्य की सृष्टि करते हैं। इन के स्वाभाव में ही हास्य रचा-बसा है। खमोश क्रीरी की क्षणिकाओं तथा रूबाइयों में मुक्त हास्य-व्यंग्य ही दृष्टिगोचर होता है। इन्होंने हास्य-व्यंग्य का प्रयोग सुधारवादी दृष्टिकोण से किया है। इनके कुछ शे'र और गजलें ऐसी हैं जिन में व्यंग्य की प्रधानता है।

गोंछन म'थित ग्यव मारुकसमंज़ द्राव यक़ेखान। तलु'कनि ख्यमु'च तम्य वुशकु च्वोट अ'स कालुचीटिससूत्य।

(होठों पर घीमल आगये वाहर श्रीयुत यके खान। वे असल में जौ की रोटी चटनी के साथ कल खा गये थे। )

आज़ादी के पश्चात् भी कई कवियों ने पैरोडी-लेखन का प्रयास किया है। इस प्रकार की पैरोडियों में गुलाम मुहम्मद की 'नज़द महमूद गामी' उल्लेखनीय है। गुलाम मुहम्मद शाद ने कामिल की एक कविता की पैरोडी यों बनाई है।

नावुक्य अछिरुय वावन छ कुरिम/कीफु अलिफ 'का' 'मिमु लाम' मिला

हवा ने विखेरे अक्षर नाम के/कीफ अलफ 'का' मीम लाम 'मिल' ।

इमामुद्दीन मखमूर, सैयद मुहम्मद रिजवी, निशात अनसारी, शरीफु, द्दीन शायक, अली मुहम्मद शहबाज़, मनजूर हाशमी, मुहम्मद अहसन, मीर गुलाम नवी फिराक़, महीउद्दान गौहर, मुहम्मद अमीन शकीब, गुलाम मुहम्मद मुश्ताक, अकबर हाशमी, अर्जुनदेव मजबूर और रहमान गा'मी, आदि ऐसे कवि हैं जिनका क्षेत्र यद्यपि हास्य-व्यंग्य नहीं पर ये अपनी रचना फलवारी में हास्य-व्यंग्य के रंग-बिरंगे सुन्दर फूल खिला सकते हैं।

हमारी नई पौध के कवियों में गुलाम मुहम्मद अजिमु, सन्नाउल्लाह नियाज़, अयूव साविर, शौकत अन्सारी, गुलाम कादिर शाह, गुलाम नवी जौहर इत्यादि ने हास्य-व्यंग्य लेखन को अपनाया है। यदि ये कविगण गम्भीरतापूर्वक इस दिशा में अग्रसर होते रहे तो अवश्य ही अपनी एक अलग पहचान बनाने में सफ़ल होंगे। अभी तक जो कुछ इन्होंने लिखा है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि इनके व्यंग्य का निशाना भी समाज ही है। आजकल के लीडरों पर व्यंग्य करते हुए अजिसु लिखते हैं :—

'हे अगरकांह आसिपानस ल्युथ करुन पानय यछान'बस बनुन लीडर तू सददिन।

[सुनो, यदि कोई अपने आप को कीचड़ में सानना चाहता हो तो उसे चाहिए कि वह लीडर बने।]

यह बात कही जा चुकी है कि सन् सैंतालीस से पहले कश्मीरी गद्य लेखन को गम्भीरता पूर्वक नहीं लिया गया था फिर भी इस काल में प्रोफेसर मही-उद्दीन हाजिनी द्वारा लिखा गया 'ग्रीस्य सुन्द गरू' (किसान का घर) नामक नाटक प्रस्तुत सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। इस नाटक में कहीं-कहीं हास्य-व्यंग्य की चाशनी विद्यमान है। सन् सैंतालीस के बाद जब कश्मीरी साहित्यकारों का कश्मीरी गद्य-लेखन की ओर ध्यान गया तो इस का समारम्भ कहानी-लेखन से

हुआ। इन कहानियों में यत्र-तत्र हास्य-व्यंग्य के स्थल देखने में आते हैं। ऐसी कहानियां लिखी हैं—अख्तर मही‌उद्दीन, अमीन कामिल, औतारकृष्ण रहबर तथा बन्सी निर्दोष इत्यादि ने। अमीन कामिल की कहानी 'अख शजरू अख की' (एक वंशावली एक भूल) एक व्यंग्यात्मक कहानी है—पर व्यंग्य किस पर किया गया है यह स्पष्ट नहीं। कहानीकार के कथनानुसार "व्यंग्य का निशाना संयुक्त परिवार तथा परिवार नियोजन की ओर ध्यान न देने वालों को बनाया गया है।" परन्तु आजकल की अतिव्यस्तता पर भी यह व्यंग्य हो सकता है क्योंकि कथा के वकील के पास इतनी लम्बी नामावली सुनने के लिए समय नहीं है। इस वकील की अयोग्यता पर भी यह व्यंग्य हो सकता है कारण उसकी समझ में यह नामावली आती ही नहीं। भुलक्कड़ों पर भी यह व्यंग्य है क्योंकि कहने वाला इस वंशवृक्ष की शाखाओं को बार-बार भूल जाता है। अमीन कामिल की 'होजिरहमान' तथा अख्तर मही‌उद्दीन की 'दन्दवज़ुन' ऐसी हास्य कथाएं हैं जिन में परिस्थितियां हास्य उत्पन्न करने में सहायक होती हैं। अख्तर मही‌उद्दीन की कहानी 'सलीम सा' बुन अंगरीज्य खानु' (सलीम साहब का इंगलिश खाना) अन्धानुकरण पर एक सफल एवं तिलमिला देने वाला व्यंग्य है। यह कहानी 'कौआ चला हंस की चाल अपनी भी भूल गया' वाली बात पूर्णरूप से चरितार्थ करती है। अमीन कामिल की 'फाटक', बन्सी निर्दोष की 'म्योन मरुन' (मेरा मरना) हरिकृष्ण कौल की 'दह आनु छय आनु (दस आने छह आने) और रहबर की 'ल'ट' (दुम) नामक कहानियां हास्य-व्यंग्य युक्त कहानियां है। 'फाटक' में व्यंग्य है और 'म्योन मरुन' में हास्य भी है। 'दह आनु छह आनु' विशुद्ध व्यंग्यात्मक कहानी है। सोमनाथ साधु रचित कहानी 'बबजी' एक सेवा-निवृत्त कर्मचारी का चित्र है। गुलाम मुहम्मद बाबा की 'मीरि हन्ज़' और नूर मुहम्मद रोशन की 'मिस्कीन बुड़' (दरिद्र बुढ़िया) नामक कहानियां निपट उपहास एवं विनोदात्मक कहानियां है।

हास्य-व्यंग्यात्मक कहानियों के अतिरिक्त कश्मीरी में हास्य-व्यंग्यात्मक लेख भी लिखे गये हैं। इस प्रकार के लेखों में सोमनाथ साधु का 'यलि म्य निकटाइ ला'ज्य (जब मैंने टाई लगाई) और रहबर का 'चाय' नामक लेख महत्वपूर्ण हैं। इन लेखों को हम व्यंग्यात्मक निबन्ध (*Stairical essays*) कह सकते हैं। गुलाम नबी खयाल का 'शायिर ना'मी ग्रा'मी' (शायर नामी ग्रामी) शीर्षक लेख आदि से अन्त तक व्यंग्य से ओतप्रोत है।

पुष्कर भान के सिलसिलेवार नाटक 'हीरो मचा'मु' को अमीन कामिल ने *Immature Comic* की संज्ञा दी है। यह वह हास्य है जो मात्र चरित्र, परिवेश या परिस्थितियों के कारण विदूषकीय हास बनता है।

मक्खन लाल महव तथा बकवास कश्मीरी भी हास्य-व्यंग्यात्मक गद्य लिखते हैं। मक्खन लाल महव का विषय हास्य होता है तौर बकवास कश्मीरी का विषय समाज। इस प्रकार का गद्य 'नेब' नामक मासिक पत्र में छपा करता था जो उन्होंने पत्रों के रूप में लिखा था। ऐसा ही एक पत्र मुझे क्रुहुन कल्चरल फोरम की पत्रिका 'अनहार' के एक अंक में पढ़ने को मिला जो क्रीरी नामक गांव के किसी लेखक का लिखा हुआ है।

विट (*wit*) याने प्रत्युत्पन्नमति के कई नमूने एक साप्ताहिक कश्मीरी पत्र 'वतन' के पृष्ठों पर नज़र आते थे। प्रोफेसर महीउद्दीन हाजिनी के लेखों में भी इस की कुछ-कुछ झलक मिलती है। कुल मिला कर देखें तो कश्मीरी में हास्य-व्यंग्य साहित्य इतना समृद्ध नहीं जितना होना चाहिए था।

—अनुवाद : पृथ्वी नाथ 'मधुप'

●

# कश्मीरी साहित्य और यूरोप के शोधकर्ता

—डा० बदरीनाथ कल्ला

ऐतिहासिक स्त्रोतों के अनुसार कश्मीरी साहित्य का श्रीगणेश शितिकण्ठ के 'महानय प्रकाश' से होता है। विद्वानों के मतानुसार शितिकण्ठ का जन्म तेरहवी शती में माना जाता है। अतः कश्मीरी साहित्य की पहली रचना यही मानी जाती है। इस कृति का संपादन महामहोपाध्याय पं० मुकुन्द राम शास्त्री ने किया तथा इसका प्रकाशन १९१८ ई० में जम्मू व कश्मीर के प्रत्नविद्या प्रकाश (रिसर्च) से देवनागरी लिपि में हुआ। इस कृति में चौदह उदय (भाग) हैं तथा सौ से अधिक पद्य हैं। इस कृति पर शैवदर्शन का प्रभाव स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होता है क्योंकि कश्मीर में शैवदर्शन का विकास आठवीं शती से चौदहवीं शती तक पराकाष्ठा पर था। यही कारण है कि इसका प्रभाव हमें संस्कृत-रचनाओं के अतिरिक्त कश्मीरी रचनाओं पर भी दिखाई देता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण 'महानय-प्रकाश' है। इस कृति में संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों के अतिरिक्त प्रायः प्राकृत तथा अपभ्रंश की शब्दावली भी प्रचुर-मात्रा में मिलती है अर्थात् तत्कालीन प्रचलित कश्मीरी-भाषा का स्वरूप पूर्णरूप से मिलता है। अतः यह कहना संगत नहीं है कि महानय प्रकाश कश्मीरी साहित्य का प्रथम निदर्शन नहीं है। इस कृति का एक पद्य दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत किया जाता है :—

यसु यसु जन्तुस संविद यस यस
नील पीत सुख दुख सरूप।
उदयिस दत्त समाजी समरस
कम कम्पन तस तस अनुरूप॥

अर्थात् : जिस जिस प्राणी को उसकी बाह्य इन्द्रियों के द्वारा या उसके मन के द्वारा जो जो नील पीत आदि रूपा या सुख दुखादिरूपा संवेदना उदित होती

है, वह वह इस क्रममार्ग के अनुकूल वनती हुई एकरूप समरसाकार महां संवित् ही के रूप में उसके लिए चमक उठती है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कल्हण-कृत राजतरङ्गिनी में 'रङ्गस्स हेतु दिण्णेति' अर्थात् रंग को हेल नामक गांव दिया गया, आदि कश्मीरी वाक्यों तथा शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसी तरह संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ कवि क्षेमेन्द्र (ग्यारहवीं शती) के देशोपदेश नामक काव्य में देशभाषा पदैः मिश्रैः देशीयभाषा का तथा कल्हण के समकालीन बिल्हण(बारहवीं शती) के महाकाव्य 'विक्रमाङ्कदेवचरित' में "यत्रस्त्रीणममपि किमपंर जन्मभाषावदेव प्रत्यावासं विलसति वचः संस्कृतं-प्राकृतञ्च' अर्थात् जहां की स्त्रियां जन्मभाषा की तरह (कश्मीरी की तरह) संस्कृत तथा प्राकृत का प्रयोग करती थीं, मातृभाषा कश्मीरी के संकेत मिलते हैं। इन उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होती है कि उस समय भी कश्मीरी साहित्य का निर्माण किसी न किसी रूप में हुआ होगा किन्तु कश्मीर में राजनैतिक परिस्थितियों के कारण इसका विकास नहीं हो सका।

महानय प्रकाश के बाद चौदहवीं शती में कश्मीर को प्रथम प्रसिद्ध कवयित्री परम योगिनी ललद्यद के वाख (वाक्) पाए जाते हैं। ललद्यद के जन्म के विषय में यद्यपि विद्वानों के मतमतान्तर हैं तथापि इस मत से सभी सहमत हैं कि उसका जन्म चौदहवीं शती में हुआ है। प्राचीन संस्कृत के इतिहासकारों ने जोनराज तथा श्रीवर में ललद्यद के जन्म के विषय में कुछ नहीं लिखा है। फारसी भाषा के सुप्रसिद्ध इतिहासकार पीर गुलाम हसन खुयहामी ने सबसे पहले 'तारीख हसन' में ललद्यद की जीवन घटनाओं का वर्णन किया है। उसके बाद मध्ययुगीन मुस्लिम इतिहासकारों में से बाबा दाऊद मुश्काती ने 'असरार-उल-अबरार' में, ख्वाजा मोहम्मद अज़म दीदमरी ने, वाक-आल-ए-कश्मीर' में, मुहम्मद दीन फौक़ ने 'ख्वातीन कश्मीर' में ललद्यद का उल्लेख विस्तृत रूप से किया है। इसका जन्म पद्मपुर (वर्तमान पांपोर) नामक गांव के एक ब्राह्मण घराने में हुआ था। इनके गुरु का नाम सिद्धमोल था जो शैवदर्शन का मर्मज्ञ था। इन्हीं से ललद्यद ने दीक्षा ली थी। अन्त में गृहस्थ छोड़कर वह आध्यात्मिक मार्ग की ओर प्रवृत्त हुई।

ललद्यद का जन्म उन विकट परिस्थितियों में हुआ जिस समय कश्मीर में दो संस्कृतियों के बीच में टकराव था। एक संस्कृति का सूर्य लुप्त हुआ था तथा दूसरी संस्कृति का सूर्य उदित हुआ था। इन दो सांस्कृतिक धाराओं के बीच में

ललद्यद के 'वाख' लोगों को मानवता तथा शांति का संदेश देने में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए। अद्वैतवाद पर चलने वाली उस उत्कृष्ट योगिनी ने शैवदर्शन का संदेश इस अमर वाख में इस प्रकार दिया है :—

'शिव छुय थलि थलि रोज़ान
मो ज़ान ह्योंद तु मुसलमान ॥"

अर्थ— कण कण में है शिव का वास
मत कर भेद हिन्दू मुस्लिम में ॥

ललद्यद के बाद ऋषि सम्प्रदाय के संस्थापक नुन्दऋषि का नाम कश्मीरी साहित्य में उल्लेखनीय है। इनका जन्म सन् १३७७-७८ ई० में कैमूह नामक गांव में हुआ था। ये गृहस्थी होकर भी महात्माओं की तरह गिरि कन्दराओं में अपनी साधना में रहते थे। अंत में संन्यास धारण करके ये वैष्णव रहे। इनकी मृत्यु १४४२ ई० में हुई। इनके श्रुक्य (श्लोक) कश्मीरी-साहित्य में सदा अमर रहेंगे। इनके वाखों पर सूफीमत के अतिरिक्त प्रत्यभिज्ञा-दर्शन का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। इनके श्रुक्यों में एक 'श्रुख' दृष्टव्य है—

सु म्य निशे बु तस निशे म्य तस निशे क़रार आव।
नाहकु छोंडुम म्य परदीशे पनने दीशे म्य यार आव ॥

अर्थ—वह मेरे पास है मैं उसके पास हूं। मुझे उसी के पास आनन्द मिला। मैंने उसे व्यर्थ ही दूसरे देशों में ढूंढा।

अपने ही देश अर्थात् अपने आप में ही मेरा प्रियतम (परम-शिव) मेरे हाथ आया।

चौदहवीं शती के बाद कश्मीरी-साहित्य में विशेष प्रगति नहीं हुई है। जैन-उल्लाब्दीन के समय (१४२०-१४७० ई०) हमें लार-निवासी महावतार की बाणासुर कथा पद्यों में मिलती है। यह कथा 'हरिवंश पुराण' के आधार पर लिखी गई है। इसमें भगवान् कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न को बाणासुर की पुत्री उषा के साथ प्रेम होता है। इसी प्रेमाख्यान का वर्णन इस खण्ड काव्य में कवि ने मार्मिक शैली में किया है। इस काव्य में संस्कृत छन्दों के अतिरिक्त कश्मीरी छन्दों-दुक्कटिका, नर्कटका, पनच वाजा आदि का प्रयोग किया गया है। इन पद्यों में से एक पद्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जाता है—

शुन उप एकमने तू भूक
बाणस कृष्णस महायुद्ध भुपव।

यो पत जित्तेन सुरुपा
असुर सो बन्नाय क्षो सुबुद्ध ॥

अर्थ—अरे राजन् ! एकाग्रमन होकर तू सुन। बाणासुर तथा कृष्ण में लड़ाई हुई। इसके बाद उस सुन्दर असुर को जीता गया, मैं उसके बारे में बताऊं कि वह (असुर) बड़ा बुद्धिमान है।

यह काव्य कवि ने देशीय भाषा में लिखा है जिसका संकेत उन्होंने अपने काव्य के अन्तिम पद्य में इस प्रकार किया है—

श्री जैनोल्लाभदीने नरपति रचिते धर्मराज्ये सुशुद्धे
बड़्वशे वत्सरे इह पनमेत सरसे कृष्णबाणान युद्धे ।
देश्यो अवतार भहे विरचोन रमणी आख्य पश्येत् सिद्धे
बन्धा गीर्वाणभाषि अज़ हरिवंशे भारतेति गरुद्धे ॥

इसी के शासन काल के समय हमें नोत्थसोम तथा योधभट्ट की दो कश्मीरी रचनाओं 'जैन चरित' तथा 'जैनप्रकाश' का संकेत श्रीवरकृत राजतरङ्गिणी में मिलता है। दुर्भाग्य से ये दोनों रचनाएं अलभ्य हैं। बाद में शाहमीरी शासनकाल के बाद चक शासनकाल (१५५४-१५८६ ई०) मुगल शासन काल, अफगान शासन काल, सिख शासन काल (१८१५-१८४६) डोगरा शासन काल (१८४३-१९४६ ई०) इन कालों में कश्मीरी साहित्य की विभिन्न विधाओं की उल्लेखनीय प्रगति न हो सकी। क्योंकि इन दौरों में फारसी भाषा ही राज्यभाषा के पद पर आसीन थी। परिणामस्वरूप कश्मीरी भाषा को राज्याश्रय न मिला।

चक शासन काल में हब्बाखातून तथा अफगान शासन काल में अरणीमाल तथा सिक्ख शासन में परमानन्द आदि साहित्यकारों की रचनायें मिलती हैं। विरहगीत लिखने का श्रेय हब्बा खातून तथा अरणीमाल को मिलता है। हब्बा खातून गीतिकाल की श्रेष्ठ कवयित्री मानी जाती है। फारसी भाषा के इतिहासकार हसन खुयहामी के कथनानुसार हब्बा खातून युसुफशाह चक की सहवासिनी थी। उसके विरह-व्यथित तथा दग्ध हृदय से संतप्त यह कविता दृष्टव्य है—

"च़ कम्यू स्वनि म्यानि बुम दिथ न्यूनखो,
च्य क्योहज़ि गयी म्योन्य दय ।
चख त्राव दय मलाल वोंद छ़ुय न यिवान,
च्य क्योहजि गयी म्योन्य दय ॥"

अर्थ—तुझे मेरी किस सौत ने भरमाया, जो तू मुझ से घृणा करने लगा।

रे मेरे प्रियतम ! क्या तेरा दिल यह गुस्सा व नफरत छोड़ नहीं सकता। मुझ से नफरत क्यों ! रे मेरे प्रियतम !

अरणीमाल :—इनके जन्म के विषय में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। इनका जन्म स्थान पलहालन नामक गांव माना जाता है। इनकी मृत्यु १८०० ई० में बताई जाती है। इसका संकेत स्वयं कवयित्री ने निम्न पद्य में किया है—

स्वन हो फोजयरव वनन त क्रेंडज़ालन पलहालन माल्युन छ्ुये।

इनका विवाह फारसी के प्रसिद्ध कवि मुंशी भवानी दास से हुआ था। अरणीमाल को भी रूपभवानी की तरह मायके में विरह की असह्य वेदना सहनी पड़ी।

उनके दग्ध-हृदय से निकली हुई कविता का एक नमूना देखिए—

अरणि रंग गोम श्रावन्य हिये
कर यिये दर्श्ुन दिये।
शाम सोन्द्रे पामन लोजस
आम तावि कोताह गोजिस
नाम व पैगाम तस कुस नियेे
कर यिये दर्श्ुन दिये॥

अर्थ—री सखी ! प्रियतम के विरह में अरणी फूल की तरह मेरा रंग पीला पड़ गया। न जाने वे कब आयेंगे। उस श्याम सुन्दर ने अर्थात् प्रियतम ने मुझे उपालम्भ का पात्र बनाया। इन विरह के अग्नि-बाणों से मेरा हृदय दहक रहा है। मेरा संदेश उन तक कौन पहुंचाये ?

गीतिकाल के बाद कश्मीरी साहित्य में संत कवियों व सूफी कवियों की परम्परा आरम्भ होती है। इन संत कवियों में शमस फक़ीर स्वच्छ काल, शाह गफूर, परमानन्द, रहमान डार, न्यामसोब, असदपरे, वाज़महमूद, अहमद बटवार्य़ आदि कवियों के नाम महत्वपूर्ण हैं। इनमें से कुछ कवियों का परिचय यहां दिया जाता है।

शमस फक़ीर—इनका जन्म सन् १८४३ ई० में श्रीनगर के चिक्राल मुहल्ला में एक मध्यवर्गीय घराने में हुआ था। इनका वास्तविक नाम मुहम्मद सद्दीक़ भट्ट था। कालान्तर में सूफी कवि न्याम साहिब की प्रेरणा से इन्होंने कश्मीरी कविता लिखना प्रारम्भ किया। इनकी कविता सूफीमत तथा वेदान्त दर्शन से प्रभावित है। एक पद्य का नमूना प्रस्तुत है—

वोज़ अश्कुन दोद यार गोम, मोत माशोक याद प्योम,

मयखान मंज़ लोल मय चोम, मोत माशोक याद प्योम ।
सोरी छि प्वख़्त ब डास ग्रोम, मोत० ॥

ग्रर्थ—ग्ररे मित्र ! मेरे इश्क का दर्द सुन । मुझे मदमस्त प्रियमता याद ग्राई । मधुशाला में मैंने प्रेम की शराब पी । मुझे प्रियतमा की याद ग्राई । उस कुम्हार (ईश्वर) ने विभिन्न रंगों के बर्तन वनाए, सारे बर्तन तो पक्के थे । मैं ही केवल कच्चा बर्तन हूं ।

स्वच्छक्राल—इनके जन्म-मरण की तिथि ग्रभी तक ग्रज्ञात है। ये पुलवामा तहसील में हन्द्र नामक गांव के रहने वाले थे । जाति के ये कुलाल (क्राल) थे । अत: लोग इन्हें स्वच्छक्राल के नाम से पुकारते हैं । इनकी कविता ग्राध्यात्मिक चिन्तन के साथ विरह की वेदना से समाहित है जैसे—

हता पान ब क्रुस गोस पानय ग्रोस व वहानय,
माजि येलि ज़ास थनय प्योस, वुछुम जून त ग्रफताब
युथुय आस त्युथुय गोस वानय ग्रोस व बहानय ॥

ग्रर्थ—रे मन ! मैं कौन हूं । इस नश्वर संसार में मेरा जन्म एक वहाना मात्र है । जब मैं मां के गर्भ से निकला तो चांद और सूरज देखे । जैसा मैं इस संसार में ग्राया वैसा ही यहां से चला जाऊंगा । मेरा शरीर केवल निमित्त मात्र था ।

शाहगफ़ूर—ये सूफी सम्प्रदाय के प्रथम कवि माने जाते हैं । इनकी जन्म तिथि अनिश्चित है । इनका जन्म स्थान बडगाम तहसील में 'छोन' नामक गांव बताया जाता है । इनके काव्य में सूफी दर्शन के अतिरिक्त वेदान्त दर्शन के सिद्धान्त भी पाये जाते हैं जैसे—

योत यिथ जन्मस केंह छुन लारुन
दारनायि दारुन सो हम सो ।
ब्रह्मा विष्णु महीश्वर गछि गारुन
शिव शक्ति ग्रासी तिहज़ि जेव
पान है खरनय जान ह्यख मारुन
दारणायि दारुन सो हम सो ॥

ग्रर्थ—इस संसार में ग्राकर मनुष्य को कुछ नहीं मिलता है । रे मनुष्य ! तू उसकी धारणा लगाग्रो जिसका तू रूप है । वेदान्त दर्शन के ग्रनुसार 'तत् त्वमसि' अर्थात् तू (जीव) उसी का (ब्रह्म) का रूप है । रे मनुष्य ! ब्रह्मा, विष्णु

तथा महेश्वर को ढूंढ। शिव तथा शक्ति उसी के (ब्रह्म) रूप हैं। तू अपने समान दूसरों से भी प्रेम कर। तू उसी का ध्यान कर जिसका तू स्वरूप है।

परमानन्द—इनका जन्म महन के निकट अनन्तनाग ज़िला में सीर गांव में सन् १७९१ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम कृष्ण पण्डित तथा माता का नाम सरस्वती था। इन्होंने अपना बाल्यकाल मार्तण्ड में ही बिताया। मार्तण्ड तीर्थ में साधुओं तथा सन्तों के सम्पर्क में रहकर इनके व्यक्तित्व पर इसका विशेज प्रभाव पड़ा। फलत: इन्होंने अपना सारा जीवन कृष्ण-भक्ति में ही बिताया। कृष्ण भक्त शाखा के कवियों में वही स्थान प्राप्त किया जो राम भक्त शाखा के कवियों में प्रकाश राम कुर्यगोम को प्राप्त हुआ है। इनका देहावसान १८७९ ई० में हुआ। इनकी कृष्ण भक्ति का एक पद्य दृष्टव्य है—

गूकुल हृदय म्योन तति चोन गूर्यवान
च्यथ व्यमर्श दीप्तिमान भगवानो।
बाबलूकपाल द्राव लछ़ डुव नावानो
बन्डाज़ बत लिव नावानो
बसन्त रंग रंग पोश वथरावानो ।। च्ज़थ व्यमर्श० ।।

अर्थ—रे आत्मा रूपी नारायण ! मेरा हृदय गोकुल है। वहां ही तुम्हारी गोशाला है। श्रीकृष्ण-राधा के विवाह के समय खुद वासुदेव ने धूल हटाकर मार्ग साफ किया। इन्द्र ने पानी का छिड़काव किया। वसन्त ने रंग बिरंगे फूल बरसाये।

इसी तरह आधुनिक कवियों में मधुसूदन खुयहामी का नाम सूफी कवियों में परमानन्द तथा कृष्ण राज़दान के बाद बड़े आदर से लिया जाता है। इनका जन्म श्रीनगर के खरयार मुहल्ला में १९१२ ई० में हुआ। इनके पिता का नाम माधवजीव (जुव) था जो कर्मकाण्ड के प्रकाण्ड पण्डित थे।

ये योगाभ्यासी तथा भगवान कृष्ण के अनन्यभक्त थे। इन्होंने शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन करके कुरान शरीफ़ का भी अध्ययन किया था। इनकी प्रतिभा अद्वितीय थी। इनके कविता-संग्रह का नाम 'मधुर्या गिरा' है जिसमें एक सौ से अधिक कवितायें हैं। इन्होंने अपना नश्वर शरीर १९६९ ई० में त्याग दिया। इनके अप्रकाशित काव्य में से कृष्णभक्ति का एक नमूना प्रस्तुत किया जाता है :—

कृष्ण कृष्ण छु़स ज़पान रात्रो छन तय

वनतय भगवान कोनय ग्राम ।
त्रति ताव् ज़ोलनस संतावन तय,
व्योद छुम नू कर्म् कल चेविथ कुस ग्राम
यिनस तू गछ़नस छुचन न छ़चन बनन तन
वन तय भगवान कोनय आम ॥

अर्थ :—मैं तो दिनरात श्री कृष्ण का जप करता हूं।

कहो ! भगवान क्यों नहीं आगये । मुझे तीन प्रकार के संतापों—आध्यात्मिक, ग्राधिदैविक तथा ग्राधिभौतिक ते जलाया । मुझे मालूम नहीं है कि किस कर्म-फल के कारण मेरा जन्म इस संसार में हुग्रा है । आवागमन का सिद्धान्त भी अटूट है ।

ग्राधुनिक काल का ग्रारम्भ भी ग्रवतार कृष्ण 'रहबर' के ग्रनुसार १९२५ ई० से ग्रारम्भ होता है । इस काल में दो महान् क्रान्तिकारी कवि पैदा हुए—गुलाम मुहम्मद महजूर तथा ग्रब्दुल ग्रहद आज़ाद । महजूर का जन्म १८८५ ई० में पुलवामा तहसील के मित्रगांव में हुग्रा था । इनके पिता का नाम वीर अब्दुल शाह तथा माता का नाम सर्हदा बेगम था । १८३१ ई० में जब मुस्लिम कांफ्रेंस ने डोगराशासन के विरुद्ध नारा लगाया तो लोगों ने उनकी कविता को राष्ट्रीय गीत के रूप में ग्रपनाया । फलस्वरूप उनकी चेतभप्रद कविता से लोगों में जागृति पैदा हुई । उनकी व्यंगात्मक शैली से यहां तहलका मच गया । कालान्तर १९५२ ई० में उनका देहावासन हुग्रा ।

महजूर के समकालीन अब्दुल अहद ग्राज़ाद का जन्म १९०३ ई० में बडगाम में हुग्रा । ये ग्रपने गांव में ग्रध्यापक नियुक्त हुए थे । यह अधिक शिक्षित नहीं थे परन्तु इनकी प्रतिभा ग्रनुपम थी । इन्हें कश्मीरी भाषा तथा उर्दू पर समाग्रधिकार था । इनकी कश्मीरी कविताग्रों में विश्वबन्धुत्व की भावनाग्रों के समेत क्रान्ति की भावना भी स्वष्रूप से झलकती है । राष्ट्रवादी इस कवि की मृत्यु १९४८ ई० में हुई ।

१९४७ ई० में ज़ब हमारा भारत ब्रिटिश साम्राज्य के चुंगल से ग्राज़ाद हुग्रा, तो सारे भारत ने राष्ट्रीयता की चेतना जागरूक होने लगी । कश्मीर में भी क्रान्तिकारी तथा राष्ट्रवादी कवियों ने ग्रपनी कवितायें इसी शैली में लिखी । यह शैली सबसे पहले महजूर तथा आज़ाद ने अपनाई । बाद में ग्रन्य कवियों ने भी इस शैली का प्राय: अनुकरण किया । उसके बाद ग्राधुनिक धारा म

अन्य कवि, गद्य लेखक, नाटककार, उपन्यासकार भी आते हैं। कवियों में मास्टर जी जिन्द कौल, मीर गुलाम रसूल नाज़की, दीना नाथ नादिम, रहमान राही अमीन कामिल, गुलाम नबी फिराक, मुज़फ़र आज़िम, चमनलाल चमन मोतीलाल साकी, मरगूब बानिहाली, अर्जुन देव मजबूर, वासुदेव रेह, राधेनाथ मसरत, सजूद सैलानी, प्रेमनाथ प्रेमी, मुहम्मद अयूब बेताब, मोतीलाल नाज़, पृथ्वी नाथ 'सायल', नाजी मुनवर आदि हैं।

कश्मीरी गद्य—कश्मीरी में गद्य लिखने की परम्परा १९वीं शती से मिलती है। सबसे पहले १८२९ ई० में पहली बार बाइबिल के न्यू टेस्टो-मेण्ट (*New Testment*) का अनुवाद कश्मीरी गद्य में किया गया। स्वतंत्रता के बाद कश्मीरी गद्य साहित्य की तीन मुख्य विधाओं—कहानी, उपन्यास तथा नाटक ने जन्म लिया।

कहानी—कश्मीरी की सबसे पहली कहानी सोमनाथ जुत्शी ने २५ फरवरी १९५१ को 'कल्चरल कांग्रेस' में पढ़ी। इस कहानी का शीर्षक—'येलि फोल गाश' था। बाद में दीनानाथ नादिम की कहानी 'जवाबी कार्ड' भी प्रकाशित हुई। इस धारा में जिन महानुभावों ने कथा-साहित्य को समृद्ध किया उनके नाम इस प्रकार हैं—अमीन कामिल, सोफी गुलाम मुहम्मद, ताज बेगम रेंज़ू, अख्तर मुही उद्दीन। अख्तर मुहीउद्दीन का 'सत संगर' नाम से एक कहानी संग्रह १९५५ ई० में प्रकाशित हुआ। इस कहानी संग्रह पर इन्हें साहित्य अकादमी, दिल्ली ने पुरस्कृत भी किया। इसके अतिरिक्त इस दिशा में हृदय कौल भारती, अली मुहम्मद लोन, अवतार कृष्ण 'रहबर', गुलाम रसूल संतोष, डा० शंकर रैणा, बंसी निर्दोष, उमेश कौल, हरि कृष्ण कौल, बशीर अख्तर आदि का योगदान भी महत्वपूर्ण है।

उपन्यास—**कश्मीरी** उपन्यास का जन्म भी बीसवीं शती में हुआ है। कश्मीरी का पहला उपन्यास 'ज़ोत बुतराथ' सन् १९५५ ई० में श्री हबीब कामरान ने लिखा था। इसका पहला अध्याय १९५५ ई० में 'कोंग पोश' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। अवशिष्ट भाग इसके अप्रकाशित ही रहे। कालान्तर तीन उपन्यास लिखे गये। अख्तर मुहीउद्दीन का 'दोद त दग' पहला उपन्यास माना जाता है। यह एक सामाजिक उपन्यास है। अमीन कामिल का 'गटि मंज़ गाश' १९४६ ई० में कबायली आक्रमण की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। यह हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना पर आधारित है।

अलीमुहम्मद लोन का-'अस्य ति छि इन्सान' वस्तुतः एक रिपार्ताज़ है जिसकी शैली औपन्यासिक कला के अधिक निकट है । १९७२ ई० में गुलाम नबी गौहर ने 'मुजरिम' और 'म्युल, नामक दो उपन्यास लिखे । मुजरिम का प्रसारण धारावाहिक रूप में रेडियो कश्मीर से होता रहा है । बंसी निर्दोष का उपन्यास-'अख दोर' तथा अमर मालमोही का-'त्रेश ततपुं न भी प्रकाशित हुए हैं । इस तरह अब उपन्यास लिखने का क्रम भी जारी हुआ है ।

नाटक :—कश्मीरी में धार्मिक उत्सवों पर रामलीला आदि नाटक स्वतन्त्रता से पहले खेले जाते थे किन्तु ऐतिहासिक रूप से सबसे पहले कश्मीरी नाटक-'सतच कहवेट (सत्य की कसौटी) श्री नन्दलाल कौल (मन्दलू) (१८७७ -१९४० ई०) ने लिखा । यह नाटक समाज सुधार समिति-द्वारा संस्थापित नाटयशाला में अनेक बार दिखाया गया । तदनन्तर गुलाम नबी 'दिलसोज़' (१९१६-१९४७) ने 'शीरीन खसरो' नामक नाटक लिखा । ताराचन्द बिस्मिल (१९४०-१९४८) तथा श्री नीलकण्ठ शर्मा (१८८८-१९७०) ने कुछ धार्मिक नाटक लिखे । शर्माजी ने बिलवा मंगल' तथा स्वटनवासवदत्त दत्त' शीर्षक से दो नाटक लिखे । बाद में प्रेमनाथ परदेसी, नूर मुहम्मद रोहान, पुष्कर भान, सोमनाथ जुत्शी, अली मुहम्मद लोन अमीन कामिल, मोतीलाल क्यमू, हरिकृष्ण कौल आदि ने भी नाट्य-साहित्य के निर्माण में अभिवृद्धि की ।

नाट्य-शास्त्र में मानोलाग (*Monologue*) का अत्यन्त महत्व है । कश्मीरी में 'मानोलाग' के प्रचार व प्रसार का श्रेय श्री प्यारेलाल हण्डू को दिया जाता है । इन्होंने सर्वप्रथम इस कला को १९५८ ई० में जन्म दिया । इनके 'मानोलाग' सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए बहुत ही सफल सिद्ध हो सकते हैं । इनका अभिनय यह स्वयं स्टेज पर तथा रेडियो पर समय समय पर करते हैं । इनके मानोलागों में प्राचीन परम्परा सुरक्षित है । इनके कुछ मानो-लाग व्यङ्ग्यात्मक भी हुआ करते हैं । इनके 'मानोलागों' में से 'द्यदि हुंद टेलीफोन' तथा 'शाबान टांगन्य गोद्य' बहुत प्रसिद्ध हैं । मानोलाग अब कश्मीर में बहुत ही लोकप्रिय हुए हैं । अब इसका विस्तार भी होने लगा है ।

यहां पर यह कहना असंगत न होगा कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद ही कश्मीरी साहित्य का निर्माण तथा विकास सुव्यवस्थित रूप से होने लगा है । इसके निर्माण, प्रचार व प्रसार तथा प्रकाशन में जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी का कार्य महत्वपूर्ण ही नहीं अपितु इतिहास में स्वर्णाक्षरों से

उल्लेखनीय भी है। कश्मीरी भाषा के बहुमुखी विकास के लिए सर्वप्रथम अकादमी ने एक परियोजना बनाई जिसके अन्तर्गत 'कश्मीरी शब्दकोश बनाने को प्राथमिकता दी गई। कालान्तर यह सम्पूर्ण शब्दकोश सात खण्डों में प्रकाशित हुआ। इसमें प्राय: पच्चास हज़ार शब्द एवं मुहावरे हैं। यद्यपि यह काम सर जार्ज ग्रियर्सन ने १९१६ ई० में आरम्भ करके १९३२ ई० में समाप्त किया था तथापि उसमें शब्द भण्डार इतना ही नहीं था जितना अकादेमी द्वारा प्रकाशित कश्मीरी शब्द कोश में। इसमें यह विशेषता है कि प्राय: प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति (*Etymology*) इन खन्डों में दी गई है। इस साहित्यिक संस्था ने अन्य साहित्य की भांति कश्मीरी साहित्य पर आज तक सैंकडों पुस्तकें विभिन्न विषयों पर प्रकाशित की हैं। अकादेमी यहां के साहित्यकारों को कश्मीरी साहित्य के निर्माण के लिए आर्थिक सहायता भी प्रदान करती है तथा उनकी विशिष्ट रचनाओं को पुरस्कृत भी किया जाता है। साहित्यिक संस्थाओं को समय समय पर अनुदान देकर उनका उत्साह-वर्धन हर प्रकार से किया जाता है। हाल ही में अकादेमी ने 'कश्मीरी विश्वकोश' बनाने की परियोजना आरम्भ की जो एक महत्वपूर्ण अनुसन्धानात्मक काम है। इसका श्रेय अकादेमी के सचिव मुहम्मद यूसुफ टेंग को दिया जाता है जिनके प्रयत्न से इसका बहुमुखी विकास सम्भव हुआ है।

इस अकादेमी के अतिरिक्त गत कई वर्षों से कश्मीर विश्वविद्यालय के कश्मीरी विभाग की ओर से कश्मीरी भाषा व साहित्य की समृद्धि के लिए प्राय: प्रतिवर्ष कश्मीरी-भाषा में विभिन्न विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। इसके लिए उपकुलपति महोदय के आदेश से परामर्शदात्री-समिति का गठन समय समय पर हो रहा है। कश्मीर विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति डा० रईस अहमद ने कश्मीरी साहित्य की प्रगति में विशेष रुचि दिखाई। इस समिति के परामर्श से विविध विषयों में निष्णात विद्वानों को प्राय: प्रतिवर्ष भिन्न भिन्न विषयों की पुस्तकें लिखने तथा अनुवाद करने के लिए पारिश्रमिक दिया जा रहा है। इस विभाग के तत्वावधान में त्रिभाषाकोश का प्रथम खण्ड तैयार हो गया है। इस वर्ष से द्वितीय खंड का काम आरम्भ हुआ है। इस कार्य के लिए उपकुलपति महोदय डा० वाहिद-उद्दीन के आदेश से सम्पादक तथा निरीक्षक मण्डल का गठन हुआ है जिसमें निम्न महानुभाव काम करे रहे हैं—

(१) प्रो० रहमान राही

(२) श्री शफी शौक

(३) श्री सोमनाथ पण्डित

(४) डा० बदरीनाथ कल्ला

(५) श्री रशीद नाज़की

(६) प्रो० गुलाम नबी फिराक़।

त्रिभाषा कोश की परियोजना मूलतः केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की है जो कश्मीर विश्वविद्यालय को भेज दी गई है।

इसके अतिरिक्त कश्मीरी साहित्य की उन्नति के लिए यहां की स्वयं सेवी संस्थाएं गत कई वर्षों से काम कर रही हैं। उन साहित्यिक संस्थाओं में से—हलका अदब सोनावारी, अदबी मरकज़ कमराज़ तथा कल्चरल आर्गनज़ेशन आदि संस्थायें इस कार्य में प्रयत्नशील हैं। इस दिशा में आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के माध्यम से भी कश्मीरी साहित्य का विकास हो रहा है। अतः दृश्य-श्रव्य साधनों द्वारा भी इसका प्रचार व प्रसार जारी है। कश्मीरी में साप्ताहिक पत्र भी निकल रहा है जिसमें साहित्यिक स्तम्भ के अतिरिक्त देश विदेश के समाचार भी प्रकाशित होते हैं। वस्तुतः पत्रकारिता के माध्यम से ही कश्मीरी भाषा के प्रति रुचि पैदा हो सकती है। अतः दैनिक, साप्ताहिक तथा पाक्षिक पत्रों का होना नितान्त आवश्यक है।

## यूरोप के शोधकर्ता

कश्मीरी भाषा व साहित्य के प्रचार व प्रसार में यूरोपीय शोधकर्ताओं तथा विद्वानों का योगदान भी बहुत ही महत्वपूर्ण रहा है। इन शोधकर्ताओं में से सर जार्ज इब्राहीम ग्रियर्सन, सर आर० एल० स्टीन, डा० अलमज़ली, डा० नेव, सर रिचर्ड टेम्पल, आर० एल० टर्नर आदि विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं।

सर जार्ज ग्रियर्सन :—ये डब्लन आयरलैंड के रहने वाले थे। डब्लन आयरलैंड की एक बड़ी बन्दरगाह है। इनका जन्म ७ जनवरी १८५१ ई० में हुआ था। इन्हें विभिन्न भाषायें सीखने की रुचि बचपन से ही थी। राबर्ट अटकन की प्रेरणा से इनकी प्रतिभा निखर उठी। इन्होंने १८७१ ई० में इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा पास की। कालान्तर में १८८३ ई० में, ये भारत आ गए। उस समय ग्रियर्सन की आयु बाईस वर्ष की थी। यहां आकर उन्होंने विभिन्न भारतीय भाषाओं का गम्भीर अध्ययन किया। कालान्तर में इन्हें भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षण का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। अधिक कार्य-भार से इनका स्वास्थ्य यहाँ खराब हो गया और इन्हें १९०३ ई० में स्वदेश जाना पड़ा। वहां भी

उन्होंने अपना काम जारी रखा । इन्होंने जिस काम के लिए यहां बीड़ा उठाया था वह शोध-कार्य इन्होंने १९२८ ई० में समाप्त किया । जीवन का अमूल्य भाग इन्होंने भारत में ही व्यतीत किया । इन्होंने 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया' के कुछ भाग लिखे जिनमें यहां की प्रायः सभी भाषाओं तथा उपभाषाओं का सर्वेक्षण उपलब्ध होता है । लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया' के भाग २ खंड ८ में कश्मीरी भाषा के उद्‌गम व विकास पर विचार किया गया है । इन्होंने सबसे पहले कश्मीरी भाषा को दार्दिक परिवार के अन्तर्गत मान लिया है । इसके अतिरिक्त इन्होंने 'ए डिक्शनरी आफ दि कश्मीरी लंगवेज़' चार खंडों में सम्पादित की जिसका प्रकाशन 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' ने किया । यह काम इन्होंने १९१६ ई० से १९३२ ई० तक समाप्त किया । यह कोश देवनागरी लिपि में लिखा गया । प्रत्येक शब्द का अर्थ अंग्रेज़ी तथा संस्कृत में दिया गया है । इस कोश में मुकुन्द राम महामहोपाध्याय इनके सहसम्पादक थे । इसके अतिरिक्त इन्होंने कश्मीरी की कुछ पुस्तकों का संपादन भी किया । कश्मीर के सुप्रसिद्ध विद्वान् ईश्वर कौल ने सबसे पहले 'कश्मीर शब्दामृत' नामक व्याकरण महर्षि पाणिनि के सूत्रों के आधार पर संस्कृत में लिखा । इस कश्मीरी व्याकरण का सम्पादन इन्होंने किया तथा इस पुस्तक को रायल एशियाटिक सोसाइटी ने प्रकाशित किया । 'लल्ल वाक्यानि' (कश्मीरी-पद्यात्मक वाक्य) भी १९२० ई० में लंदन से प्रकाशित किये । इसी प्रकार कृष्ण राजदान के 'शिव परिणय' तथा प्रकाश राम कुर्यगामी के कश्मीरी रामायण का भी संपादन इन्होंने किया । इस तरह इन्होंने अपना सारा जीवन कश्मीरी साहित्य के निर्माण में समर्पित किया । इनका देहावसान ९ मार्च १९४१ ई० में इंग्लैंड में हुआ ।

सर आर० एल० स्टीन :—इनका जन्म हंगरी के बुदापेस्ट स्थान में २३ नवम्बर १८४२ ई० में हुआ था । इन्होंने बुदापेस्ट स्कूल में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की । बाद में इंग्लैंड के विश्वविद्यालय में प्राचीन भाषाओं—संस्कृत, ग्रीक, आदि का अध्ययन किया । कालान्तर इन्हें पी० एच० डी० की उपाधि से भी समलंकृत किया गया । १८८८ ई० से १८९९ ई० तक ये लाहौर विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार भी नियुक्त हुये और इन्होंने लाहौर के गवर्नमिन्ट ओरियण्टल कालेज में प्रिंसिपल के रूप में बहुत काल तक काम किया । १८८८ ई० में वे पहली बार कश्मीर आये । इसी समय इन्होंने राजतरङ्गिणी का अनुसन्धानात्मक कार्य भी आरम्भ किया । इन्होंने बड़े परिश्रम के बाद राजतरङ्गिणी का सम्पादन

तथा अंग्रेज़ी में अनुवाद भी किया। इसका पहला संस्करण १९०० ई० में प्रकाशित हुआ। भारत सरकार की ओर से १९०६-१९०८ तक ये अनुसन्धानात्मक कार्य करने के लिए मध्य एशिया तथा पश्चिमी चीन चले गये। फलत: उन्होंने *Ser India* नामक पुस्तक तीन खंडों में प्रकाशित की। इनकी बहुमुखी प्रतिभा से प्रभावित होकर १९०९ ई० में 'रायल ज्योग्राफी सोसाइटी' ने इन्हें स्वर्ण-पदक प्रदान किया। इसके अतिरिक्त फ्रांस तथा स्वीडन की ओर से भी इन्हें पदक मिल गये। कालान्तर काबुल में १९४३ ई० में इन्होंने यह नश्वर शरीर छोड़ दिया। स्टीन महोदय ने कश्मीरी लोक कहानियों का संग्रह 'हातिमस टेल्स' शीर्षक से अंग्रेज़ी भाषा में छपवाया। उन्होंने ये कहानियां १८९६ ई० में सिन्ध (पाज़ील) के रहने वाले हातिम तेली से एक कश्मीरी पं० श्री गोविन्द कौल की मदद से सुनी थीं। इनमें कुछ कहानियाँ भारतीय, कुछ ईरानी तथा कुछ कश्मीरी थीं। कश्मीरी की लोक कहानियों में प्रमुख कहानियां शबरंग, तोते की कहानी आदि हैं। इनकी मुख्य पुस्तकों में से ये पुस्तकें हैं :—

(1) *Archaeological Exploration in Chinese Turkestan.*
(2) *Ancient Khotan. 2 vols.*
(3) *Innermost Asia. 3 vols.*
(4) *Innermost Asia (Geographical Journal) 1925.*
(5) *Ruins of Desert Cathomy. 2 vols.*
(6) *Sand-buried ruins of Khotan.*
(7) *Ancient Geography of Kashmir.*

इसके अतिरिक्त संस्कृत पाण्डुलिपियों की सूची *(Catalogue)* भी इन्होंने जम्मू रणवीर अनुसंधान पुस्तकालय में तैयार की।

डा० अलमज़ली :—ये अंग्रेज़ यहां १८६५ ई० में 'मेडिकल ईसाई मिशनरी' के रूप में आए। इन्होंने *A Vocabulary of Kashmir Language* नामक पुस्तक लिखी जो १८७२ ई० में लंदन में प्रकाशित हुई। इसमें कश्मीरी शब्दों के अर्थ अशुद्ध लिखे गए हैं। ग्रियर्सन ने भी इनके शब्दों का प्रयोग 'कश्मीरी डिक्शनरी' में किया है। ये विद्वान् १८७२ ई० में गुजरात में स्वर्गवासी हो गये।

डा० नेव :—ये १८८२ ई० में कश्मीर आ गए। इन्होंने *Picturesque Kashmir* तथा *Thirty years in Kashmir* नामक पुस्तकें लिखीं। कश्मीर में इन्होंने बहुत समय बिताया।

सर रिचर्ड टेंपल :—सन् १९२४ ई० में इन्होंने *The word of Lalla*

(दि वर्ड आफ लल्ला) शीर्षक से ललद्यद के विषय में एक महत्वपूर्ण पुस्तक छपवाई। इसमें ललद्यद के वाक्यों (वाखों) का परिमार्जन करके सारगर्भित भूमिका के समेत प्रस्तुत किया गया।

आर० एल० टर्नर :—ये १९२२ से १९५४ ई० तक लंदन विश्वविद्यालय के अफेरीकन तथा ओरियण्टल विभाग में संस्कृत के अध्यक्ष पद पर आसीन थे। ये १९३७ से १९५७ ई० तक इस स्कूल के निदेशक भी रहे। इन्होंने १९३१ ई० में *Comparative and Etymological Dictionery of the Nepali Language* प्रकाशित की। इनके गवेषणात्मक कार्य से प्रभावित होकर १९५२ ई० में वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय ने इन्हें डी० लिट० की उपाधि से सम्मानित किया। बाद में लंका के विश्वविद्यालय ने भी १९५८ ई० में इन्हें इस उपाधि से अलंकृत किया। इनके महत्वपूर्ण प्रकाशनों में से—*A Comparative Dictionery of the Indo Aryan Languages* मानी जाती है। इस कोश का प्रकाशन आक्सफर्ड यूनिवर्सिटी-प्रेस से १९६६ ई० में हुआ। इस कोश में संस्कृत शब्दों के साथ प्राय: भारतीय आर्यभाषाओं तथा उपभाषाओं जैसे पाली, प्राकृत, कश्मीरी, पंजाबी, नेपाली, आसामी, बंगाली, उड़िया, बिहारी, मैथिली, भोजपुरी, कोंकणी, सिंहली आदि के साथ साम्य दिखाया गया है। इसमें १४८४५ शब्द हैं। भाषा विज्ञान की दृष्टि से यह अत्यन्त उपयोगी है।

जे-हिण्टन नोल्ज़ (*J Hinton Knowels*) :- इन्होंने कश्मीर में १८८३-८४ ई० में ईसाई मिशनरी में काम किया। इस मिशनरी को सफल बनाने में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। यहां रहकर ये कश्मीरी लोक-साहित्य से इतने प्रभावित हुए कि लोक-कथाओं का संकलन उन्होंने १८८५ ई० में लंदन में प्रकाशित हुआ। कश्मीरी कहावतों की ओर इनका ध्यान १८८३ ई० में आकृष्ट हुआ। कालान्तर उन्होंने १८८५ ई० में 'ए डिक्शनरी आफ कश्मीरी प्रोवर्ब्स एण्ड सेइंग्स' नाम से कश्मीरी कहावतों का कोश लन्दन से छपवाया। रोमन लिपि में लिखित २६३ पृष्ठों के इस कोश में प्राय: १४०० मुहावरे, कहावतें आदि संकलित हैं।

फ्रेडरिक ड्रिव (*Frederic Drew*) :- ये कश्मीर में १८६२ ई० से १८७२ ई० तक रहे। इस अवधि में ये लद्दाख में गवर्नर के रूप में काम करते रहे। इन्होंने रामबनी, पहाड़ी, कष्टवारी तथा कश्मीरी भाषा का तुलनात्मक अध्ययन किया। कालान्तर इन्होंने यहा की भाषाओं के विषय में

*The Jammu & Kashmir Territories* नामक पुस्तक १८७५ ई० में लंदन से प्रकाशित की।

वारोन चार्लस हुगल (*Baron Charles Hungle*) :- जे जर्मनी के थे। १८३६ ई० में कश्मीर आकर उन्होंने जम्मू कश्मीर तथा पंजाब के विषय में जर्मन भाषा में एक सुन्दर यात्राविवरण लिखा जिसका बाद में अनुवाद भी हुआ।

एल० बी० बोवरिंग :—ये वर्तानिया के निवासी थे। इन्होंने कश्मीरी भाषा की शब्दावली लिखी जो १८६६ ई० में प्रकाशित हुई।

*Francois Bernier*–फ्रांकोस वार्नियर :—ये फ्रांस में १६२० ई० में पैदा हुए थे। इनके मां बाप साधराण कृषक थे। इन्होंने १६५२ ई० में मैट्रिक की परीक्षा पास की। कालान्तर ये अपनी योग्यता के कारण डाक्टर (चिकित्सक) भी बन गये। इन्होंने १६६३ ई० में भारत की यात्रा की। इन्हीं दिनों मुगल सम्राट् शाहजहां को मृत्यु हुई। इनका सम्बन्ध मुगल दरबार के साथ भी रहा। कुछ समय के बाद फ्रांस के राजा *Louis* ने इन्हें *Travels in the Mogol Empire* छपाने की अनुमति दी। ये कश्मीर भी आये थे। इन्होंने पहली बार कश्मीर के विषय में हमें विस्तृतरूप से जानकारी दी। कश्मीर की पौराणिक घटनाओं का भी उन्होंने उल्लेख किया है। इनकी मृत्यु २२ सितम्बर १६८८ ई० को पेरिस में हुई।

कार्ल फ्रेडरिक :—जर्मनी के इस विद्वान् ने जर्मन भाषा में कश्मीरी भाषा के विषय में १८८७-८८-८९ ई० के दौरान बहुत से गवेषणात्मक लेख लिखे। इस उच्च कोटि के विद्वान ने मुहम्मद गामी की कश्मीरी मसनवी-'यूसुफ जुलेखा' का अनुवाद जर्मन भाषा में किया। यह अनुवाद जर्मन की एक प्रसिद्ध पत्रिका में १८९५ से १८९९ ई० तक दो बार छप गया।

डा० (मिस) गोमरी :—इनका जन्म कनाडा में हुआ था। वहां ही इन्हें डाक्टर की उपाधि भी मिल गई। इन्होंने अपना सारा जीवन कश्मीर में ही बिताया तथा जहां के मिशन-हस्पतालों में रोगियों की सेवा तनमन से की। इस तरह इन्होंने अपना जीवन 'ईसाई मिशन सोसाइटी' को समर्पित किया था। अपनी मिशनरी के प्रचार कार्य में इन्होंने कश्मीरी भाषा व साहित्य का अध्ययन जारी रखा। बाद में इन्होंने कश्मीरी कविताओं का संग्रह संकलित किया और कुछ अपने गीत रोमन लिपि में १९६० ई० में छपाये। इसके अतिरिक्त

१९४३ ई० में कश्मीरी गीत भी छपवाये। इस संग्रह का नाम उसने 'कोशरि ग्यवनच पोशमाल' रखा। ये गीत उस समय गिरजाघरों में पढ़ाये जाते थे। इसके अतिरिक्त इन्होंने स्वास्थ्य के विषय में पद्यात्मक कश्मीरी प्राइमर भी लिखा जैसे :—

पाक ईसव सुंदि पास कर, म्योन दिल तिं पाक कमाल।

युथ कर हो मोहबत चोन, त वुछ हो चोन जमाल॥

अर्थ :—शुद्ध ईसा की ओर से मेरा अन्तःकरण भी पवित्र कर जिससे मैं आपसे प्रेम करता तथा आपका कमाल देखता। ये अपने देश में ही १९६७ ई० में मर गईं।

वाल्टर आर लारेंस :—इनका जन्म लंदन में १८५७ ई० में हुआ। इनकी प्रराम्भिक शिक्षा डेम्स स्कूल में हुई। बाद में कालेज में इन्होंने ग्रीक तथा लैटिन भाषायें सीख लीं। आक्सफर्ड में इन्होंने इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा पास की। विंगेट साहिब की अध्यक्षता में इन्हें जम्मू व कश्मीर राज्य के भूमान (बन्दोबस्त) का उपाध्यक्ष १८८७ ई० में नियुक्त किया गया। कश्मीर में छः वर्ष तक रहकर सारी घाटी का इन्होंने भ्रमण किया। उन्होंने *The Valley of Kashmir* नामक पुस्तक अंग्रेजी में लिखी। कश्मीरी भाषा के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए ये दोनों भाषाओं में साम्य इस प्रकार दर्शाते हैं :—

चर्यन कथन न सूद। *In many words there can be no profit.*

चर्यन गगरायन न रूद। *With much thunder there is no rain.*

बारोन चार्लस हुगम *(Baron Charles Hugel)* :—ये जर्मनी निवासी थे। १८३६ ई० में कश्मीर आकर इन्होंने जम्मू, कश्मीर तथा पंजाब के विषय में एक सुन्दर यात्रा विवरण लिखा जिसका बाद में अनुवाद भी हुआ।

टी० ग्राहम बेली :— इस अंग्रेज विद्वान् ने कश्मीरी भाषा के समेत उत्तरी भारत की भाषाओं का भाषाविज्ञान तथा ध्वनि विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करके *Linguistic studies from the Himalayas* नामक पुस्तक लिखी।

*Nilla Cram Crook* नीला क्राम क्रूक :— यह एक सुप्रसिद्ध अमेरीकन कवि की लड़की थी। उन्होंने यूनान में शिक्षा प्राप्त की तथा अनेक भाषाओं का वहां अध्ययन किया इसके अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत भाषा व साहित्य का भी गम्भीर अध्ययन किया था। कालान्तर वह भारत आ गईं। १९३३ ई० में वह

गांधी आश्रम में सम्मिलित हुईं। उन्होंने अपनी आत्मकथा न्यूयार्क से १९३९ ई० में प्रकाशित की। कश्मीरी साहित्य के साथ उन्हें विशेष रुचि थी। अतः उन्होंने कश्मीर की सुप्रसिद्ध रचनाओं को एकत्रित करके उनका कश्मीरी में अनुवाद किया। उनका यह अनुवाद *The way of the Swan* नामक कविता संग्रह में १९५९ ई० में छपा। जिन रचनाओं का अनुवाद उन्होंने किया, उनमें ललद्यद नुन्दर्योष, पं० परमानन्द तथा हब्बा खातून आदि हैं।

इसी तरह अन्य विदेशी शोधकर्ताओं का योगदान भी कश्मीरी भाषा व साहित्य के निर्माण में महत्वपूर्ण रहा है। निःसन्देह इन विद्वानों का योगदान भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणादायक सिद्ध होगा।

अतः स्वतन्त्र-भारत के सर्वोदय के साथ हमारी यह कश्मीरी भाषा भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण करके सारे विश्व में अन्य भाषाओं की तरह फले फूले।

●

## संदर्भ ग्रन्थ सूची


1. राजतरंगिणी: स्टीन द्वारा संपादित।
2. महानय प्रकाश: मुकुन्दराम महामहोपाध्याय द्वारा संपादित।
3. वाणासुर कथा: श्री दीना नाथ शास्त्री द्वारा अनूदित (अप्रकाशित)
4. कश्मीरी भाषा और साहित्य—डा० शिबन कृष्ण रैणा।
5. *Research Biannual Vol. II No. 1, 1978, Published by J&K Research Deptt.*
6. विक्रमाङ्कदेवचरितम् ब्यूलर द्वारा संपादित।
7. कोशिर ज़बान त अदब (1976) अमीन कामिल द्वारा संपादित।
8. कोशिर अदबच तारीख—श्री अवतार कृष्ण रहबर।
9. काश्मीरिकी संस्कृत भाषयो स्तुलनात्मकमध्ययनम्
   (लेखक का शोध-प्रबन्ध, अप्रकाशित)
10. *Studies in Kashmiri—Prof. Jai Lal Koul.*
11. तारीख हसन पीर गुलाम हसन खुयहामी।

# जम्मू प्रांत में कश्मीरी साहित्य

—शाहबाज़ राजोरवी

भाषा और साहित्य मानव जाति की महान सम्पत्ति है। जो एक ही समय राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय हो सकती है। यह भौगोलिक सीमाओं के साथ-साथ सार्वभौमिक स्थितियों का भी प्रतिनिधित्व करती है। यह उस भाषा और साहित्य की योग्यता और महत्व के अनुसार होता है। वर्तमान समय में मानव समाज का सांस्कृतिक लेन देन इतना बढ़ गया है कि भाषाएं और उनका साहित्य अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पहुंच गया है। इसलिए हर देश में दूसरे देश की छोटी बड़ी भाषाओं का शिक्षण और उन पर खोज होती है। वह उन लोगों की मातृ भाषा नहीं होती। परन्तु ज्ञानार्जन की प्रवृत्ति और मानसिक झुकाव के कारण ऐसा होता है। अफ्रीकन बोलियों पर पश्चिमी देशों में और कश्मीरी भाषा पर रूस में खोज इसका प्रमाण है। इस प्रकार पूरे मानव समाज का भाषा सम्बन्धी परिचय एक ज्ञानात्मक खोज के अतिरिक्त मानव समाज में नए आविश्कार का कारण बनता है।

इस पृष्ठभूमि में जब कश्मीरी भाषा और साहित्य का जम्मू प्रान्त में सर्वेक्षण किया जाए तो हमें पहले कुछ बातें ध्यान में रखनी होंगी। पहली यह कि भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार हिमालय की तराई की बोलियों की ध्वनि मिलती जुलती है। पूर्वी पर्वत श्रृंखला तक मिलते-जुलते शब्द और ध्वनियां मिलती हैं जिसमें नेपाली, गढ़वाली, हिमाचली, डोडा पर्वत की बोलियां और वादी में कुपवारा तक कश्मीरी में ध्वन्यात्मक[1] समानता है। इससे आगे पश्चिम की ओर पोठोहारी का प्रभाव और उत्तर-पूर्व में शिना और दर्दी प्रभाव आरम्भ होते हैं। यह हदबन्दी केवल एक अस्थायी तौर पर ही परिचित करने के लिए है। न कि निश्चित रूप

---

1. नेपाली और कश्मीरी भाषा में बहुत से शब्द मिलते जुलते हैं।

से भाषाओं के क्षेत्र का सीमांकन ! इसलिए कश्मीरी भाषा इसी पर्वत श्रृंखला में किश्तवाड़ और, इसके आस पास सुराजी और पोगली के रूप से गुज़रकर बनिहाल के पार अपना वास्तविक भाषाई और साहित्यिक रूप निश्चित करती है।

दूसरे यह कि जम्मू प्रान्त के कश्मीरी बोलने वाले लोग भाषा की रचना या इसके प्रवेश के समय से यहां रह रहे हैं। या इसके पश्चात कभी-कभी वादी से भिन-भिन राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक कारणों के फलस्वरूप इन क्षेत्रों में आ बसे हैं। इनमें वर्तमान जिला कठूआ के बसोहली, मलहार, लोईहाल; उधमपुर के रामनगर, गूल, गुलाबगढ़, महोर, जमलान, बलमतकोट, शेरगढ़ी; राजौरी के बुद्धल, दरहाल, थन्नामंडी बहरोट, हसयोट; पुंछ के पौशाना, सैंला, बफलयाज़, मस्तान दररा, दरा सांगला, सुरनकोट सेड़ी ख्वाजा, मन्डी का पूरा क्षेत्र, पुंछ शहर और मेंढर के कुछ इलाके सम्मिलित हैं। ज़िला डोडा पूर्णरूपेण कश्मीरी भाषा से प्रभावित है। क्योंकि कश्मीरी बहुसंख्यकों की भाषा है और दूसरी बोलियां इससे प्रभावित या इसका लघुरूप हैं। डाक्टर मरगूब बनिहाली के कथनानुसार[2] हज़रत शेख-उल्-आलम के काव्य के चिन्ह अभी तक पोगली और किश्तवाड़ी में विद्यमान हैं। प्रोफेसर हाजनी का कथन है कि कश्मीरी भाषा मंडी (पुंछ) से वादी में पहुंची है। यह प्रमाणित होना एक अलग विषय है। परन्तु यह माना हुआ तथ्य है कि कश्मीरी की सांस्कृतिक और भाषाई पृष्ठभूमि के यह लोग जम्मू प्रान्त में १२ लाख हैं (१९७१ की जनगणना के अनुसार दस लाख चौदह हज़ार[3] चार सौ) यह लोग पंचाल बेल्ट के भिन्न-भिन क्षेत्रों में बिखरे हुए हैं। जिनकी विशिष्ट साहित्यिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है[3] जिसके साथ यह जुड़े हुए हैं। यद्यपि कुछ लोग स्थानीय बोलियों के अधिक प्रभाव के कारण कश्मीरी नहीं बोलते मगर समझते अवश्य हैं।

इन लोगों के सामाजिक रीति-रिवाज़ में कश्मीरियत विद्यमान है। इनमें हिन्दू और मुस्लिम सम्मिलित हैं जिनकी सांस्कृतिक आवश्यकताएं समान हैं, जिनकी रक्षा और प्रगति राज्य और केन्द्रीय सरकार का कर्त्तव्य है।

जब हम जम्मू प्रान्त में कश्मीरी साहित्य का संक्षिप्त जायज़ा लें तो हमें भिन्न-भिन्न चित्र भुतकाल के धुन्धलके में से उभरते दिखाई देते हैं। शहमीरी

2. सोन अदब (कश्मीरी) 1976 पृष्ठ 380
3. मनशूर बनिहाली शीराजा 1981 पृष्ठ 80 अंक 18

राज की नींव रखने वाले का सम्बन्ध बुद्धल[4] (राज़ोरी) से होना एक खोजात्मक पग है। जो सांकेतिक है कि कश्मीरी लोग यहां किस भाषाई और सामाजिक स्तर पर रहते थे।

अब्दुल अहद आज़ाद का कहना है कि वली उल्लाह मट्टू की मशहूर रचना "हिमाल नागराय" में ज़रीफ पुंछी की गज़लें सम्मिलित[5] हैं।

इसी प्रकार मकबूल[6] अमृतसरी की रचना का वर्णन इस बात का प्रमाण है कि वर्तमान जम्मू प्रान्त में कश्मीरी भाषा की साहित्यिक जड़ें दूर तक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रखती हैं। १९४७ से पहले बनिहाल को स्वर्गीय अब्दुल रहीम[7] जो जन्म से ही अन्धे थे-का महाकाव्य मसनवी "गुलबदन" मिलता है। यह मसनवी किसी मुहम्मद अली मुराद की इसी नाम की मसनवी का कश्मीरी रूप है। इनकी दूसरी रचना "बहरामगोर" है। यह दोनों हस्तलेख हैं। यहीं के दूसरे कश्मीरी कवि अहमदशाह बनिहाली हैं जो फारसी में "नात" लिखते थे। इनकी कश्मीरी रचनाओं का वर्णन प्रोफेसर मरगूब बनिहाली ने किया है।

इसी पर्वतीय क्षेत्र के प्रात: स्मरणीय स्वर्गीय रसा जावदानी का जादुई काव्य उभरता है। स्वर्गीय १९४२ से अन्तकाल, १९७९, तक कश्मीरी काव्य और साहित्य की सेवा करते रहे। उनकी रचनाएं कई पत्रिकाओं में छपती रहीं, फिर उनका काव्य-संग्रह "नेरंगे गज़ल"[8] के नाम से प्रकाशित हुआ। इससे पूर्व यह संग्रह "सुम्बलस्तान" और "तोहफाए कश्मीर" के नाम से रचनात्मक काल से गुज़रा। स्वर्गीय सौंदर्य-रस के दूत थे। और उच्चकोटी के कवि थे। उनकी रचना का मधुर-स्वर ही उनके जनता तक पहुंचने का कारण था उनकी रचनाएं इतनी लोकप्रिय थीं कि वादी के प्रसिद्ध गायकों ने उन्हें लय-बद्ध करके अमर कर दिया। उनके समकालीन कवियों में इशरत कश्मीरी भी थे जो उर्दू में प्रसिद्ध हैं लेकिन कश्मीरी में भी काव्य-रचना की क्षमता रखते थे। गुलाम हैदर गंगरू, गुलाम-रसूल निशात और कामगार भी उनके साथी थे। कामगार

---

4. "अकादमी" जून 1976
5. कश्मीरी जबान और शायरी (अब्दुल अहद आजाद)
6. कश्मीरी जबान और शायरी
7. मनशूर बनिहाली शीराज़ा अंक 18, 1981 पृष्ठ 81
8. मनशूर बनिहाली शीराज़ा 1981 अंक 18 पृष्ठ-82

को फारसी और कश्मीरी साहित्य सेवा के लिए एकादमी का पुरस्कार और सरोपा मिला है। इस बुजुर्ग-पीढ़ी ने कश्मीरी काव्य और साहित्य की सेवा जारी रखी है।

१९७० की दहाई में कश्मीरियों के भाषाई और साहित्यिक अहसास ने एक नई अंगड़ाई ली। मरगूब बनिहाली के अनुसार[9] १९७७ के चुनाव में इन लोगों का यह अहसास और गहरा हो गया। १९७५ में कश्मीर विश्व-विद्यालय ने एक कश्मीरी साहित्य सेमिनार आयोजित किया जिसमें जम्मू प्रान्त के कश्मीरी साहित्यकार और लेखक आमंत्रित किए गए। उन्होंने कश्मीरी में लेख प्रस्तुत किए और तदनन्तर परिचर्चाओं और विचार विमर्श में भाग लिया। इससे वादी के कश्मीरी साहित्यकारों को जम्मू प्रान्त के कश्मीरी साहित्य की समृद्धि का अहसास हुआ। इसी आयोजन से प्रेरित होकर (*BEHROT*) "बहरोट" (राजौरी) में एक कश्मीरी साहित्यिक संगठन का श्रीगणेश हुआ। जो पुंछ-राजौरी में कश्मीरी लेखकों को प्रेरणा देता है और उनकी रचनात्मक शक्ति को प्रज्ज्वलित करता है। इसका नाम "कोशर मर्कज़" है। १९८० में कोशर मर्कज़" ने राजौरी-पुंछ के कश्मीरी कवियों का संकलन "राज़वेर" के नाम से प्रकाशित किया। इसमें पुंछ के दीना-नाथ रफीक, गुलाम-रसूल कमर गुलाम नबी तकी, राजोरी के कयूम नायक, शबीर-राथर, फिदा राजौरवी बशीर डार, बशीर मीर, रशीद रैंना, मुख़तार-साक़ब और मेरी रचनाएं सम्मिलित हैं। इसी बीच लगातार मांग होने पर अकादमी ने कृपा पूर्वक १९८० में एक दिन का कश्मीरी साहित्य सेमिनार आयोजित किया। जिसमें जम्मू के कश्मीरी लेखक इकट्ठे हुए। इसके लाभदायक परिणाम सामने आए और जम्मू के कश्मीरी लेखकों का समूह "जम्मू कश्मीर कल्चरल फोरम" के संगठन में आ गया। इसके प्रधान बशीर भद्रवाही और मंत्री मनशूर बनिहाली चुने गये। १९८२ में अकादमी की छत्रछाया में एक कश्मीरी "नातिया" कवि सम्मेलन "अभिनव थियेटर" जम्मू में हुआ। १९८१ में दूरदर्शन केन्द्र श्रीनगर के कश्मीरी कवि-सम्मेलन में जम्मू के कश्मीरी कवि आमंत्रित थे। १९८२ में रेडियो कश्मीर श्रीनगर के अखिल भारतीय कश्मीरी कवि सम्मेलन में बशीर भद्रवाही और मुझे (शाहबाज़ राजौरवी) आमन्त्रित किया गया। अकादमी की ओर से १९८२ के लिए मेरे काव्य-संग्रह 'चेन गमय आवाज़'

---

9. सोन अदब (कश्मीरी) 1986-पृष्ठ-382 मरगूब बनिहाली

(*Tehen-e-Gamtch Awaz*) को पुरस्कार मिला। यह एक प्रोत्साहन का कार्य था। जो अकादमी की जम्मू क्षेत्र में कश्मीरी साहित्य के प्रचार-प्रसार में रुचि का द्योतक है। इससे पहले वफा भद्रवाही का काव्य-संग्रह "नाद" और बशीर भद्रवाही का लोक गीतों का संकलन प्रकाशित हो चुका है। इस संक्षिप्त वर्णन से उन लक्ष्यों का परिचय हो सकता है जो जम्मू प्रान्त में कश्मीरी साहित्य के सफर की कहानी कहते हैं। साहित्यकारों का यह समूह अपनी क्षमता के अनुसार आज भी आगे की ओर बढ़ रहा है। इसमें दीनानाथ रफीक, जांबाज, वफा, फिदा किश्तवाड़ी निशात, कामगार, बशीर भद्रवाही, जैसे माननीय साहित्यकारों से लेकर मनशूर, मुशताक, ज़मीर, रिन्द, फिगार, हितेषी, मुशताक फरीदी, शबीर राथर, कयूम बशीर, कमर, मीर, रैना, इत्यादि युवा साहित्यकारों की लेखनी भी रचना कार्य में जुटी हुई है। मनोभाव और सुन्दरता का यह संगम डूल (किश्तवाड़) से लेकर मंडी-पुंछ तक फैला हुआ है। इनकी अकसर साहित्यिक-गोष्ठियां होती हैं। कोशर मर्कज़ की ओर से आयोजित दो वार्षिक सम्मेलन मील के पत्थर की हैसियत रखते हैं। इनमें लेख मालाएं कहानियां, सांस्कृतिक कार्यक्रम और कवि सम्मेलन शामिल हैं। जिन्हें श्रोताओं ने जी भरकर सराहा। लोक संगीत की एक टोली अकादमी द्वारा जम्मू में आयोजित लोकोत्सव में भी भाग लेने आई। रेडियो-जम्मू के 'पम्पोश' प्रोग्राम में अकसर जम्मू के कश्मीरी सहित्यकार भाग लेते हैं किन्तु इस प्रोग्राम का समय बहुत कम (सप्ताह में ३० मिन्ट) है जिसे बढ़ाए जाने की मांग निरन्तर की जाती है। अकादमी के प्रोत्साहन के लिए धन्यवाद ज्ञापन करने के साथ यह कहना असमीचीन न होगा कि जम्मू प्रान्त में कश्मीरी साहित्य के पथ-प्रदर्शन ने लिए जनसंख्या के संतुलन में दिल खोलकर आर्थिक सहायता दी जाए। दूरदर्शन, यहां के कश्मीरी साहित्य को प्रोत्साहन दे।

यहां शायद जम्मू के कश्मीरी साहित्य के स्तर का सवाल उठाया जाये। हम यह मानते हैं कि कश्मीरी साहित्य के वर्तमान स्तर को बनाए रखना जम्मू के कुछ कश्मीरी साहित्यकारों के लिए थाड़ा कठिन है। मगर साहित्य एक उमंग कल्पना की एक उड़ान और एक प्रेम-ध्वनि है जिसका अपना व्यक्तित्व और पहचना, है। अगर यह प्रयास जारी रहा और इसे प्रोत्साहन मिला तो शायद कश्मीरी साहित्य के इतिहास में एक नये स्कूल का जन्म सम्भव हो सकेगा। इसका अपना सामाजिक, देवमालाई और रीति-वाद का अपना विभिन्न व्यक्तित्व होगा— अपनी शब्दावली (*Diction*) होगी जो इस साहित्य की निजी पहचान यहां के परिवेश में स्थापित कर सकेगी।

●




Published by the Secretary on behalf of
J&K Academy of Art, Culture & Languages, Jammu
& Printed at Selwel Printers, K. C. Market, Jammu-Tawi.